मुनि मंथन निष्कर्ष

बजरंग मुनि

MARGDARSHAK
मार्गदर्शक
"शराफत से समझदारी की ओर"

मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान

42, मारूति लाइफ स्टाईल कोटा रोड रायपुर 492001

प्रकाशकः

मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान

42, मारूति लाइफ स्टाईल कोटा रोड

रायपुर 492001

support@margdarshak.info

मो0– 7869250001

प्रथम संस्करण : 2023

ISBN : 00000000

कम्प्यूटर ग्राफिक्स : संजय गुप्ता

मुद्रक

....

मूल्य : 50/

MUNI MANTHAN NISKARSH BY BAJRANG MUNI

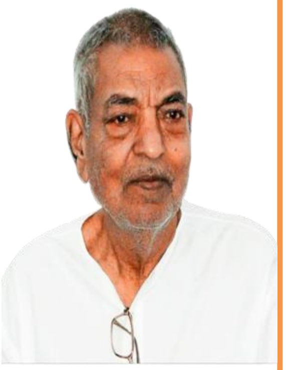

लेखक का परिचय

श्री बजरंग लाल अग्रवाल सम्प्रति श्री बजरंग मुनि जी का जन्म रामानुजगंज जिला—बलरामपुर (सरगुजा) छ.ग. में हुआ था। आप अपने किशोरावस्था से ही स्वामी दयानन्द के समाजिक आन्दोलन से अत्यन्त प्रभावित थे और युवा अवस्था में डॉ0 राममनोहर लोहिया के राजनैतिक चिन्तन से आन्दोलित हुए। भले ही आपकी राजनैतिक एवं सामाजिक यात्रा भारतीय जनसंघ एवं भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में आरम्भ हुई किन्तु आपने हमेशा सामाजिक उत्तरदायित्वों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। दलिय राजनीति की विवशताओं को समझ कर आपने अपने मौलिक चिन्तन का आकार देने के लिए आपने अपने जन्म दिन 25 दिसम्बर को सन् 1984 में दलगत राजनीति से विदा ले ली। तत्पश्चात वर्षो के एकान्तवास सामाजिक राजनैतिक विषयों पर विशेषज्ञों एवं जनसामान्य के साथ गहन, चिन्तन, मंथन, एवं अध्ययन प्रारम्भ किया। आपने भारतोय संविधान का गहन अध्ययन कर सैद्धांतिक रूप से लोक—स्वराज के मापदण्डो के अनुकूल भारतीय संविधान का संशोधित प्रारूप पदान किया। प्रस्तुत प्रारूप में श्रद्धेय जी ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था की ज्वलंत समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किये हैं।

श्री बजरंग मुनि जी ने अपने गृह नगर रामानुजगंज में लोक स्वराज प्रणाली का सफल प्रयोग कर रामान्‌जगंज नगर के 20 किलोमीटर के क्षेत्र को अपराध मुक्त क्षेत्र घोषित किया। इस सफलता से उत्साहित होकर व्यवस्था—परिर्वतन अभियान को सम्पूर्ण देश में फैलाने के लिए वर्ष 2005 में दिल्ली फिर ऋषिकेश को अपने कार्य क्षेत्र के रूप में चुना।

आपको देश के तमाम लब्ध प्राप्त राजनैतिक सामाजिक चिन्तकों का भरपूर सहयोग एवं समर्थन मिला जिसमें मुख्य रूप से आप श्री ठाकुर दास बंग, श्री गोविन्दाचार्य, श्री राज सिंह, श्री रामबहादुर रॉय, श्री रणवीर शर्मा, आचार्य पंकज का नाम है।

पता—श्री बजरंग मुनि
विला न. 42, मारूति लाइफ स्टाईल
कोटा रोड रायपुर 492001

MARGDARSHAK मार्गदर्शक
"शराफत से समझदारी की ओर"

मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान — **मूल्य : 50/**

42, मारूति लाइफ स्टाईल कोटा रोड
रायपुर 492001

ISBN 00000000

अनुक्रम

1– वैचारिक 4–15

वैचारिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक,परिभाषाएँ, वैचारिक परिभाषाएँ, परम्परा और यथार्थ, सिद्धान्त और व्यवहार, विचार प्रचार, योग, संन्यासी, उपदेश, ज्ञान, शिक्षा, बुद्धि और विवेक, सुख–दुःख, दान, चंदा और भीख, भूत–प्रेत और तंत्र–मंत्र, विचारक और साहित्यकार, निष्कर्ष और चिंतन, भावना और विचार, हिंसा और अहिंसा, आदर्शवाद, शासन, अनुशासन और स्वशासन, क्रिया–प्रतिक्रिया, नीति, नीयत, व्यवहार, शराफत, समझदारी, चालाकी, प्रवृत्ति, सत्य और असत्य, व्यवस्था,

2– संवैधानिक 15–35

प्रस्तावना, समानता, संविधान, सरकार, संविधान संशोधन, समान नागरिक संहिता, भाषा, राइट टू रिकॉल, दल–बदल कानून, पर्सनल ला, हिन्दू कोड बिल, अधिकार, मूल अधिकार, अभिव्यक्ति, आपातकाल, संगठन संस्थान, हड़ताल, सैनिक, अनशन, बहुमत, चुनाव आयोग, राष्ट्रपति प्रणाली, केन्द्र, राज्य, कार्यपालिका, सरकार, संसद, कार्यपालिका, मानवाधिकार, लोकपाल, विधायिका, चुनाव सुधार

3– न्यायिक 36–52

न्याय, न्याय और व्यवस्था, जनहित, पुलिस, अपराध, दण्ड, अपराध और अपराध नियंत्रण, भय, शोषण, सुरक्षा, उग्रवाद, शास्त्र, भ्रष्टाचार, मिलावट, बलात्कार

4– लोकतान्त्रिक 52–63

सत्ता का विकेन्द्रीयकरण, स्वराज्य, ग्राम सभा, पंचायती राज, आदर्श लोकतंत्र, ग्राम संसद/लोकसंसद, लोक संसद का प्रारूप, महात्मा गांधी, गांधीवादी, विनोबा, सुभाष चंद्र बोस, तानाशाही, लोकतंत्र और लोकस्वराज्य, व्यवस्था, निजीकरण, केन्द्रीयकरण, पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और नक्सलवाद, नक्सलवाद, रामराज्य, ज्ञान और त्याग

5— राजनैतिक 64—82

समस्याएँ, शासक, राजनीति, राजनैतिक दल, स्वदेशी, राष्ट्रीयता, गुलामी, भारत विभाजन, कमीर समस्या, विदेश नीति, शरणार्थी, नौकरशाही, आधार कार्ड, मीडिया, जेएनयू, वर्ग संघर्ष, आरक्षण, अल्पसंख्यक, हरिजन—आदिवासी, क्षेत्रीयता, सिख दंगे, भारत की प्रमुख समस्याएँ और राजनीति के दस नाटक, नेहरू, लोहिया, नरेंद्र मोदी

6— धार्मिक 83—93

अहिंसा, सम्प्रदाय और धर्म, हिन्दू आतंकवाद, क्रिया—प्रतिक्रिया, संख्या विस्तार, वेद, मूर्ति पूजा, धर्म गुरू, इस्लाम, धर्म संस्कृति, आस्तिक—नास्तिक, ईश्वर, स्वामी दयानंद

7— सामाजिक 94—104

समाज, आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कर्तव्य, अधिकार और दायित्व, परम्परा, व्यक्तिगत सम्पत्ति, आक्रोश, साम, दाम, दण्ड, भेद, समाजशास्त्र, महिला सशक्तिकरण, आरक्षण, दहेज, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, विवाह, अनैतिक और अपराध, छुआछूतः—

8— आर्थिक 105—124

सम्पत्ति अधिकार, कर प्रणाली, अर्थपालिका,'कर' चोरी तथा काला धन, डॉलर, रुपया, मुद्रा, कृत्रिम ऊर्जा, श्रम शोषण, कृषि, आर्थिक विषमता, आर्थिक रेखा, गरीबी, बालश्रम और बंधुआ मजदूर, महंगाई, बेरोजगारी, पर्यावरण प्रदूषण, आवागमन, उत्पादक—उपभोक्ता, नरेगा, शहरी ग्रामीण, बढ़ती आबादी, विश्व की प्रमुख समस्याएं और समाधान, विश्व युद्ध, संयुक्त राष्ट्र संघ, पाकिस्तान, इराक, भारत, अमेरिका, इस्लाम, चीन सम्बन्ध, गुट निरपेक्षता, नागासाकी, विश्व से सम्बन्ध, एन.जी.ओ

9— वैश्विक

विश्व की प्रमुख समस्याएं एवं समाधान, विश्व युद्ध, संयुक्त राष्ट्र संघ, पाकिस्तान, इराक, भारत, अमेरिका, इस्लाम—चीन संबंध, गुट निरपक्षता, नागासाकी, विश्व के संबंध, एन.जी.ओ यदि मैं तानाशाह होता तो, हमारा मुख्य नारा

मुनि मंथन निष्कर्ष

—बजरंग मुनि

9617079344

बचपन में ही मैंने यह अनुभव कर लिया था कि विश्व में भौतिक उन्नति की गति तो बहुत तेज है किन्तु नैतिक पतन भी उतनी ही तेज गति से हो रहा है। शिक्षा बहुत तेज गति से बढ़ रही है और ज्ञान घट रहा है। व्यक्ति के स्वभाव में लगातार स्वार्थ और हिंसा के प्रति विश्वास बढ़ रहा है। कुल मिलाकर हम धीरे—धीरे अवनति की दिशा में बढ़ रहे हैं। मैंने बचपन में ही इन समस्याओं की उत्पत्ति के कारण और समाधान पर चिन्तन आरम्भ किया। मैंने सढ़सठ वर्ष पूर्व सन् उन्नीस सौ पचपन में अपने कुछ मित्रों के साथ इन सभी विषयों पर गहन विचार आरम्भ किया। इस सम्बन्ध में हम मित्रों ने अपने शहर में विचार मंथन के साथ—साथ अनेक प्रयोग भी किए। धीरे—धीरे हमारे कार्य का परिचय—क्षेत्र बढ़ता गया तथा देश के अनेक विद्वान इस तरह के विचार मंथन और प्रयोग से जुड़ते गए। मेरा अनुभव लगातार बढ़ता गया। इसी अनुभव विस्तार के क्रम में मैं सन् दो हजार पांच से दो हजार नौ तक दिल्ली में रहा। यहीं मैंने आर्य समाज की प्रेरणा से वानप्रस्थ स्वीकार किया। अस्सी वर्ष की आयु प्रारम्भ होत ही मैंने ऋषिकेश में गंगा किनारे एकांतवास में अपने इन अनुभवों और प्रयोगों पर गम्भीर मंथन किया तथा महसूस किया कि अब मेरे किए गए अनुभवों को समाज को सौंपकर मुक्त होने का उपयुक्त समय आ गया है। इसलिए मैंने अपने जन्मदिन पच्चीस दिसम्बर को बयासी वष की आयु में कर्म-संन्यास स्वीकार किया।

भारतीय संस्कृति की मान्यता के अनुसार वर्तमान विश्व की सामाजिक व्यवस्था कलयुग के चौथे चरण में है। इसलिए समाज व्यवस्था में कलयुग के पतन का अंतिम चरण मानकर सतयुग के रूप में सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना की कल्पना की गई है। मान्यतानुसार धीरे—धीरे व्यवस्था में बदलाव होता जाएगा और यह बदलाव हम तथा आप सरीखे लोग ही मिलकर करेंगे। मुझे विश्वास है कि वर्तमान समय इस बदलाव के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। समाज व्यवस्था के पतन का सबसे बड़ा आधार यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के चरित्र मं हिंसा और स्वार्थ का विस्तार हो रहा है। इन दोनों अवगुणों पर नियंत्रण की शुरूआत परिवार से तथा शासन की शुरूआत समाज से होती है। परिवार व्यवस्था छिन्न—भिन्न हो गई है तथा समाज व्यवस्था का स्वरूप

पूरी तरह बदलकर सम्पूण व्यवस्था पर राष्ट्रवाद के नाम पर राज्यवाद हावी हो गया है। अब समाज में धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र की तो व्यापक चर्चा होती है पर समाजशास्त्र की या तो चर्चा ही नहीं होती या फिर विकृत स्वरूप में होती है। ऐसी विकृत चर्चा से समाज और अधिक कमजोर हो गया है। विचार मंथन लगभग बंद-सा होकर केवल विचार–प्रचार बढ़ता जा रहा है। तर्कहीन अविचारित मान्यताएं तथा परिभाषाएं समाज में सत्य के समान स्थापित हो रही हैं। व्यक्ति से लेकर समाज तक किंकर्तव्यविमुढ़ है। युग परिवर्तन की शुरूआत यही से करनी होगी कि विश्व में फैली सत्य के समान असत्य धारणाओं को विश्व स्तर पर चुनौती दी जाए। एक शंकराचार्य ने अहिंसक ढंग से बौद्ध मान्यताओं को सफल चुनौती दी थी। हम आप मिलकर इन धारणाओं को सफल चुनौती दे सकते हैं। मैंने इस कार्य के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण किया है। मैं पच्चीस दिसम्बर को अपने सारे अनुभव तथा अन्य निष्कर्ष आपको सौंपकर कार्य मुक्त हुआ।

इस पुस्तक में लिखे गए निष्कर्ष मेरे व्यक्तिगत अनुभव हैं। इन अनुभवों में कई सर्वकालिक, दीघकालिक, अल्पकालिक या तात्कालिक टिप्पणियां हैं तो कई व्यक्तिगत टिप्पणियां भी हैं। प्रायः अच्छे–अच्छे विचारक अपने अनुभवों को उपयुक्त समय पर बिना समाज को दिए दुनिया से चले जाते हैं और समाज उस धरोहर से महरूम रह जाता है। मैं इस विकृति से बचना चाहता हूँ। इस पुस्तक में लिखा गया प्रत्येक विषय मेरा व्यक्तिगत विचार है। ये विचार किसी भी रूप में सामूहिक नहीं हैं। मेरे इन विचारों में आपको भाषा, साहित्य, कला का अभाव दिखना स्वाभाविक है। विचारों के सामने साहित्य और कला का महत्व अलग हो सकता है। दोनों की तुलना नहीं हो सकती। मेरे विचारों में आप वामपंथ या दक्षिण पंथ को यदि खोजेंगे तो आपको कठिनाई होगी, क्योंकि इन विचारों के साथ कोई पंथ जुड़ा हुआ नहीं है। यह तो सिर्फ उत्तरपथ है। इसमें सिर्फ प्रश्न नहीं है, सिर्फ तर्क नहीं है बल्कि समाधान भी बताने का प्रयास किया गया है। मेरे विचारों में धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र अथवा अर्थशास्त्र खोजने पर भी आपको कठिनाई होगी क्योंकि मेरे विचारों में कोई शास्त्र नहीं है और ना ही किसी शास्त्र से प्रभावित है। इसमें तो सिर्फ समाज विज्ञान को आगे रखा गया है। मेरे विचार तानाशाही या लोकतंत्र से प्रभावित नहीं है। आपको इनमें आंशिक रूप से लोकस्वराज्य की झलक देखने को मिल सकती है। मेरे विचारों में षड्दर्शनों का भी कोई प्रभाव नहीं है कारण कि मुझे दर्शन का भी कोई अनुभव नहीं है। मैंने तो आप को यथार्थ दर्शन समझाने का प्रयास किया है। मेरे विचारों में आपको गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद या अन्य कोई वाद अथवा वाद–विवाद खोजने से भी नहीं मिलेगा क्योंकि यह विचार पूरी तरह "समाज वाद" पर आधारित है; समाजवाद

पर नहीं। मैंने दो वर्ष पूर्व अपनी इस पुस्तक को "एक निवेदन" के नाम से अपने कुछ चुने हुए मित्रों को समीक्षा के लिए भेजी थी। लेकिन समीक्षा कुछ गिने–चुने मित्रों की ही आई। अन्य मित्रों ने या तो पढ़ा ही नहीं या पढ़ना आवश्यक नहीं समझा। मेरे मित्रों की आई हुई समीक्षा का भी मैंने गंभीरता से विचार करके उसको शामिल किया है।

इस वैचारिक पुस्तक के माध्यम से मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हूँ कि आप अपने व्यक्तिगत या पारिवारिक हित में कुछ कार्य कर रहे हैं तो करते रहिए किंतु यदि आप सामाजिक हित के किसी कार्य में सक्रिय हैं तो थोड़ा ठहरिए। सबसे पहले आप विभिन्न विचारों के लोगों के साथ संवाद कीजिए। उसके बाद विचार मंथन और उसके बाद निष्कर्ष निकालिये या फिर कोई फैसला कीजिए। निष्कर्ष के बाद ही कार्य करना उचित होगा अन्यथा समाज के हित में किया गया आपका कार्य समाज के लिए नुकसानदायक भी हो सकता है।

मैंने 25 दिसंबर 2020 को कर्म–सन्यास की घोषणा की थी और मेरी इस घोषणा को ध्यान में रखकर मेरे मित्र बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। कोरोना को समाप्त हुए अभी करीब छः माह ही हुए हैं लेकिन हमारे मित्रों ने ज्ञानयज्ञ परिवार को आधार बनाकर सामूहिक यज्ञ को आगे बढ़ाना शुरू कर दिया है। इसका प्रमुख कार्यालय रामानुजगंज में है। हमारे कुछ अन्य मित्रों ने व्यवस्था परिवर्तन अभियान के नाम से लोकस्वराज्य के लिए जन–जागरण शुरू किया है। इसका वर्तमान कार्यालय दिल्ली में है। मेरे विश्व भर में अनेक मित्र और शुभचिंतक हैं जो मेरे इस युग परिवर्तन के प्रयत्न को स्वतः आगे बढ़ा सकेंगे और समान विचारधारा वाले लोगों के साथ मिलकर आगे की योजना तैयार करेंगे। उन सब लोगों को मेरा वैचारिक और मानसिक सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

– निवेदक–

बजरंग मुनि

1 वैचारिक

वैचारिकः—

(110) किसी निष्कर्ष तक पहुँचने में परिभाषाएँ बहुत उपयोगी होती हैं। परिभाषाएं विचार मंथन द्वारा निकली किसी विश्वसनीय अनुसंधान इकाई द्वारा घोषित होनी चाहिए। यदि प्रचलित परिभाषा गलत हो तो उस आधार पर निकले निष्कर्ष का गलत होना निश्चित होता है। वर्तमान विश्व में प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाओं के लिए उत्तरदायी अनेक परिभाषाएं या तो असत्य है या विकृत हैं।

(120) समाज में प्रचलित विकृत परिभाषाओं में स्वराज्य, संविधान, मूल अधिकार, अपराध, धर्म, समाज, महंगाई, बेरोजगारी, समाजवाद, समानता, नागरिक संहिता, गरीबी आदि विषय प्रमुख हैं। परिभाषाओं को जानबूझकर योजनापूर्वक विकृत करने का कार्य अलग—अलग समय पर अलग—अलग विचारधाराओं ने किया किन्तु इस कार्य में मुख्य भूमिका साम्यवादियों की रही है। पश्चिम के पूंजीवादियों ने भी आंशिक रूप से यह कार्य किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में विचार मंथन की प्रक्रिया बंद हो जाने से यहां भी ये विकृत परिभाषाएं पढ़ाई जाने लगीं और इसी आधार पर गलत निष्कर्ष भी निकलते चले गए।

(130) समाज विरोधी तत्वों पर समाज के नियंत्रण तथा समाज के सुचारू रूप से संचालन हेतु बनाई गई प्रक्रिया को व्यवस्था कहते हैं।

(131) व्यवस्था की सहायता के लिए समाज द्वारा बनाई गई किसी मूर्त इकाई को राज्य या सरकार कहते हैं।

(132) राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमा निर्धारित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते हैं।

(133) राज्य के न्यूनतम तथा व्यक्ति के अधिकतम अधिकारों की सीमा निर्धारित करने वाले दस्तावेज को कानून कहते हैं।

(134) व्यक्ति के वे प्रकृति प्रदत्त अधिकार जिनमें राज्य या संविधान सहित कोई भी अन्य इकाई उसकी सहमति के बिना तक तब कोई कटौती न कर सके जब तक उसने किसी अन्य व्यक्ति के वैसे ही अधिकारों का उल्लंघन न किया हो, उन्हें मूल अधिकार कहते हैं।

(135) किसी समस्या विशेष से निपटने में सामान्य उपायों की विफलता निश्चित होने पर व्यवस्था द्वारा तंत्र को प्रदत्त विशेष अधिकारों की परिस्थिति को आपातकाल कहते हैं।

(136) प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा और उच्छृंखलता पर नियंत्रण का दायित्व निर्वहन करने वाली व्यवस्था को तंत्र, राज्य या सरकार कहते हैं।

(137) समाज के न्यायपूर्ण तथा सुव्यवस्थित संचालन हेतु विधान बनाने वाली अधिकार सम्पन्न इकाई को विधायिका कहते ह।

(138) व्यक्ति को असीम स्वतंत्रता का निर्बाध मिलना न्याय है और उस स्वतंत्रता में आने वाली बाधाओं का दूर होना व्यवस्था है।

(139) लोकतंत्र का अर्थ होता है लोक–नियन्त्रित–तन्त्र।

धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, परिभाषाएँः–

(140) किसी व्यक्ति द्वारा किसी अन्य की स्वतंत्रता का उल्लंघन करना ही अपराध होता है।

(141) स्त्री–पुरूष के बीच बिना सहमति के बनाए जाने वाले शारीरिक सम्बन्ध को बलात्कार कहते हैं।

(142) स्वराज्य का अर्थ है प्रत्येक इकाई को अपना आंतरिक संविधान बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान बनाने में सहभागिता।

(143) किसी अन्य के हित में किया गया निःस्वार्थ कार्य धर्म होता है।

(144) जब किसी इकाई के अधिकांश व्यक्ति बिना विचारे बार–बार कोई कार्य करते हैं तो वह उस इकाई की संस्कृति मानी जाती है।

(145) सामूहिक सम्पत्ति तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने वाले व्यक्तियों के समूह को परिवार कहते हैं।

(146) स्वतंत्रता और सहजीवन का तालमेल व्यक्त करने वाले दस्तावेज को समाजशास्त्र कहते हैं।

(147) वस्तु–विनिमय को सरल बनाने के लिए बनाए गये माध्यम को मुद्रा कहते हैं।

(148) किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार काम का अभाव बेरोजगारी कहलाती है।

(149) मुद्रास्फीति का अर्थ 'नगद रुपए पर अघोषित कर' होता है।

वैचारिक परिभाषाएँः–

(150) विचारकों तथा मार्गदर्शकों द्वारा विचार मंथन के माध्यम से निकाले गए निष्कर्ष यथार्थ होते हैं और उन निष्कर्षो को बिना विचारे आचरण में लाना परम्परा।

(151) प्रकृति के अनसुलझे रहस्यों को भूत तथा सुलझ चुके रहस्यों को विज्ञान कहते हैं।

(152) सत्य और अहिंसा के मार्गदर्शन में तत्कालीन समस्याओं के समाधान का प्रयास ही गांधी मार्ग कहलाता है।

(153) किसी कार्य के परिणाम की सम्भावना और यथार्थ के बीच का अन्तर सुख या दुःख का कारण होता है।

(154) सिद्धान्त और व्यवहार के संतुलन से बना मार्गदर्शन नीति कहलाती है।

(155) अपने मनोभाव और विचार दूसरे व्यक्ति तक ठीक उसी अर्थ में पहुंचाने के माध्यम को भाषा कहते हैं।

(156) किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित किसी सीमा रेखा से ऊपर वालों को समान स्वतंत्रता तथा नीचे वालों को समान सुविधा को समानता कहते हैं।

परम्परा और यथार्थः–

(161) विचारकों तथा मार्गदर्शकों द्वारा विचार मंथन के माध्यम से निकाले गए निष्कर्ष यथार्थ होते हैं और उन निष्कर्षों को बिना विचारे आचरण में लाना परम्परा। वर्ण व्यवस्था का एक भाग निष्कर्ष निकालता है तो अन्य तीन परम्परा अनुसार पालन करते हैं। वर्तमान दुनिया में सामाजिक विषयों में विचार मंथन बंद होने से निष्कर्ष निकलना बंद हो गया। समाज की व्यवस्थाओं में यथार्थपरक दृष्टिकोण के अभाव से या तो परम्पराएं रूढ़ होनें लगी या अपने आप टूटने लगी।

सिद्धान्त और व्यवहारः–

(162) सिद्धान्त और व्यवहार के संतुलन से निर्मित दृष्टिकोण नीति कहलाती है। सिद्धान्त मार्गदर्शक होते हैं, दीर्घकालिक होते हैं, तो व्यवहार अल्पकालिक, परिस्थितिजन्य, देश–काल–परिस्थिति के अनुसार कर्ता द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का क्रियान्वयन होता है। सिद्धान्त निष्कर्ष निकालने में सहायक होते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार के बीच संतुलन होना चाहिए। उच्च आदर्शवादी नीतियां हमेशा अव्यवस्था का आधार बनती हैं। भारत में अधिकांश नीतियां उच्च आदर्शवाद पर आधारित होने के कारण अव्यावहारिक हैं।

विचार प्रचारः—

(163) विचार मंथन और विचार प्रचार अलग—अलग होते ह ं। वर्तमान समय में विचार मंथन और उससे प्राप्त निष्कर्ष की तुलना में विचार प्रचार की मात्रा और महत्व बहुत बढ़ गया है।

योगः—

(164) मानसिक, शारीरिक और आत्मिक प्रगति को आठ चरणों में बांटकर उसका क्रमिक विकास योग कहलाता है। योग में मानसिक विकास के लिए दो विषय यम तथा नियम, शारीरिक के लिए तीन क्रियाएं आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा आत्मिक के तीन विषय धारणा, ध्यान, समाधि होते हैं। योग का क्रम निश्चित है। यम—नियम शुरू किए बिना आसन खण्डित योग है जो प्रतिबंधित तथा अपूर्ण है। बाबा रामदेव ने यम— नियम छोड़कर आसन से सरल योग कराने के कारण प्रसिद्धि पाई, यद्यपि यह प्रयत्न योग का विकृत स्वरूप है। अब यम—नियम से योग की शुरूआत करना कठिन हो गया है।

संन्यासीः—

(165) संन्यासी शब्द के उच्चारण में यदि 'स' के ऊपर बिन्दु भी है तो संन्यासी का अर्थ सत्+न्यासी अर्थात् सत्य का संरक्षक होना चाहिए। संन्यासी को धर्म, जाति, राष्ट्र आदि सभी दायित्वों से मुक्त होकर सिर्फ सत्य को ही आधार बनाना चाहिए। संन्यासी किसी धर्म, राष्ट्र, संगठन अथवा विचारधारा का प्रतिनिधित्व न करके सम्पूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करता है। इसीलिए भारतीय संस्कृति में संन्यासी को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त होता है।

उपदेशः—

(166) (1) उपदेशः— गूढ़, तात्विक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, मस्तिष्क ग्राह्य तथा अपने विचार होते हैं। (2) प्रवचनः— कलात्मक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, हृदय ग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं। (3) भाषणः— कलात्मक, हृदय ग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं किन्तु चरित्र आवश्यक नहीं। 4. शिक्षाः— तत्व और कला का समन्वय, हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होता है किन्तु चरित्र और अपने विचार आवश्यक नहीं।

ज्ञान, शिक्षा, बुद्धि और विवेकः—

(167) ज्ञान और शिक्षा अलग अलग होते हैं। ज्ञानः— प्रत्येक व्यक्ति का अपने व्यक्तिगत अनुभव का निष्कर्ष होता है, सकारात्मक होता है तथा समझदारी की दिशा देता है। शिक्षाः— हमेशा दूसरों से प्राप्त होती है, नकारात्मक भी हो सकती है, क्षमता विस्तार में सहायक होती है मार्गदर्शन में नहीं। शिक्षा सूचना भी देती है और सूचना ज्ञान में सहायक होती है।

(168) बुद्धि और विवेक अलग–अलग होते हैं। विवेक उचित–अनुचित को अलग–अलग करके उचित दिशा में प्रेरित करता है तो बुद्धि ऐसे निष्कर्ष को सफल बनाने का मार्ग बताती है। बुद्धि का उचित–अनुचित का निर्णय करने में योगदान नहीं होता।

सुख–दुःखः–

(169) किसी कार्य के परिणाम की सम्भावना और यथार्थ के बीच का अन्तर ही सुख या दुःख होता है और इस अन्तर की मात्रा ही सुख और दुःख की मात्रा होती है। परिणाम की सम्भावना का गलत आकलन सुख और दुःख का कारण होता है। आकलन जितना यथार्थ परक होगा सुख या दुःख उतना ही कम होगा अथवा नहीं होगा। सुख और दुःख की उत्पत्ति मन से है। घटनाओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुसार परिणामों के ठोक–ठाक आकलन का अभ्यास करना चाहिए।

दान, चंदा और भीखः–

(170) (1) स्वेच्छा से तथा अपनी क्षमता के अनुसार, लेने वाले का पूरा अधिकार हो, बिना मांगे दिए जाने को दान कहते हैं। दान देने के बाद वापस नहीं लिया जा सकता। (2) मिलकर इकट्ठा करने, देने वाले का पूरा अधिकार, आपसी विचार विमर्श के आधार पर देने को चन्दा कहते हैं। चन्दे का पूरा हिसाब, देने वाला पूछ सकता है तथा परिस्थिति अनुसार वापस भी ले सकता है। (3) स्वेच्छा से तथा लेने वाले की आवश्यकता को देखते हुए. लेने वाले का पूरा अधिकार, मांगने पर दिए जाने को भीख कहते हैं। भीख का न तो हिसाब लिया जा सकता है न इसे वापिस लिया जा सकता है।

(171) चंदा एक ऐसा धंधा है जिसमें कभी घाटा नहीं होता है। यदि आर्थिक लाभ न भी हो तो सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़नी तो निश्चित है। अनियन्त्रित हड़तालें और अनियन्त्रित चन्दे के माध्यम से ही समाज विरोधी तत्व सामाजिक कार्यों की ओर लगातार सक्रिय होकर शक्तिशाली होते जाते हैं। ऐसी हड़तालों और चन्दों को समाज में नियन्त्रित करना चाहिए।

(172) कुपात्र को दिया गया दान, दाता के लिए घातक होता है। बिना सोचे–समझे दान देने की अपेक्षा दान न देना अच्छा है। वर्तमान सामाजिक स्थितियों में दान, चंदा और भीख के मामले में भावना की तुलना में बुद्धि का अधिक उपयोग करना चाहिए।

भूत–प्रेत और तंत्र–मंत्रः–

(173) प्रकृति के अनसुलझे रहस्यों को भूत कहते हैं और सुलझ चुके रहस्यों को विज्ञान कहते हैं। जादू–टोना, प्रेत, तंत्र–मंत्र आदि सभी रहस्य इसी श्रेणी में आते हैं। पच्चानवें प्रतिशत ऐसी घटनाएं, असत्य, भ्रम–जाल या हमारे अज्ञान का लाभ उठाने

का प्रयास होती हैं। अतः सामान्यतया ऐसी बातों या घटनाओं को असत्य मानना चाहिए। फिर भी प्रकृति के रहस्य असीम हैं और विज्ञान की सीमाएँ हैं। अतः किसी प्रत्यक्ष रहस्य को अस्वीकार करने की जिद नहीं करनी चाहिए। भ्रम और भूत एक–दूसरे के पूरक होते हैं। प्रत्येक एक–दूसरे की वृद्धि में सहायता करता है।

विचारक और साहित्यकारः–

(174) विचार और साहित्य अलग–अलग होते हैं। विचार करने तथा साहित्य सृजन का गुण एक ही व्यक्ति में भी हो सकता हैं और पृथक–पृथक भी। विचारः– चिन्तन से निकला हुआ निष्कर्ष होता है, बुद्धि प्रधान होता है, बिना साहित्य के आगे नहीं बढ़ सकता, कठिनाई से ग्रहण होता है। साहित्यः– निष्कष को समाज तक पहुंचाने का आधार होता है, कला प्रधान होता है, भावनाओं को मजबूत करता है, आसानी से ग्रहण हो जाता है। विचार और साहित्य एक–दूसरे के पूरक भी होते हैं और निर्भर भी। जब विचारकों का अभाव हो जाता है तब निष्कर्ष निकालने का काम साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी अथवा प्रवचनकर्ता करना शुरू कर देते हैं। इससे साहित्य की दिशा भी गलत हो जाती है और समाज पर उसका प्रभाव भी। वर्तमान समय में यही हो रहा है। भिन्न विचारों के मंथन के बाद निकला हुआ निष्कर्ष ही अनुकरणीय होता है। कुम्भ की परम्परा सम्भवतः इसी मंथन के लिए शुरू हुई होगी। पुराने समय में सूचना प्रौद्योगिकी का अभाव होने से आम नागरिक ऐसे निष्कर्ष समाज तक पहुंचाने हेतु इकट्ठे होते होंगे।

निष्कर्ष और चिंतनः–

(175) निष्कर्ष निकालने और क्रिया करने के बीच संतुलन होना चाहिए। बिना निष्कर्ष निकाले कार्य करने की जल्दबाजी घातक होती है तो निष्कर्ष निकालने में अधिक विलम्ब भी कार्य की सफलता में बाधक होता है। वर्तमान समय में विचार–मंथन का अभाव है और सक्रियता बहुत बढ़ गई है। हर आदमी कोई न कोई निष्कर्ष लेकर प्रचार में संलग्न है जबकि उसने निष्कर्ष निकालने में कभी विचार–मंथन नहीं किया। चिंतन और चिंता अलग–अलग गुण होते हैं। चिंतन आवश्यक है और चिंता घातक। चिंतन निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया होती है तो चिंता, चिंतन में बाधक।

भावना और विचारः–

(176) मनुष्य के कार्यो में भावना और विवेक का समन्वय अनिवार्य होना चाहिए। भावना त्याग का प्रतीक होती है और विवेक ज्ञान का। भावना की प्रधानता संतुलित निर्णय में बाधक होती है। भावना प्रधान व्यक्ति संतुलित निर्णय नहीं कर सकता। अच्छी भावनाएं व्यक्ति को शरीफ बनाती है। विवेक व्यक्ति को समझदार बनाता है। स्वार्थी तत्व लगातार समाज में भावनाओं का विस्तार चाहते हैं क्योंकि विवेक उनके स्वार्थ में बाधक होता है। धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्र, लिंग, उम्र, आदि भावनात्मक मुद्दे इनके

हथियार होते हैं। अधिकांश सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाएं भावना विस्तार में निरन्तर लगी हुई हैं।

(177) विचार और बुद्धि भी अलग–अलग होते हैं। विचार निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है तो बुद्धि निकाले गए निष्कर्ष को क्रियान्वित करने में।

हिंसा और अहिंसाः–

(178) मार्गदर्शक तथा पालक को हमेशा अहिंसक होना चाहिए। रक्षक हिंसक हो सकता है। सेवक जिसके साथ जुड़े उसी के अनुसार आचरण करे। लोकतंत्र में हिंसा रक्षक को छोड़कर पूरी तरह प्रतिबंधित होनी चाहिए। जब गुलामी हो तब मार्ग हिंसक भी हो सकता है। जो लोग लोकतंत्र में हिंसा का समर्थन करते हैं वे भी गलत हैं और हिंसा करने वाले भी। हिंसा का समर्थन करने वाले धूर्त होते हैं और करने वाले मूर्ख। हिंसा समर्थक स्वयं हिंसा नहीं करते बल्कि दूसरों को प्रेरित करते हैं। नासमझ लोग प्रेरित होकर हिंसा करते हैं।

(179) बल प्रयोग का सहारा लेने के पूर्व चार बातें अवश्य ध्यान रखेंः– (1) जब आपके मौलिक अधिकारों पर आक्रमण हो। (2) जब न्याय प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो। (3) जब जीतने की पूरी संभावना हो। (4) जहां आप भावना प्रधान न हों। यदि यह चारों स्थितियां न हों तो कभी बल प्रयोग नहीं करना चाहिए।

आदर्शवादः–

(180) आपसी सहमति के आधार पर किए गए किसी कार्य की किसी अन्य को समीक्षा नहीं करना चाहिए। किसी सौदेबाजी और सहमति के आधार पर वोट, दहेज, धर्म, शारीरिक सम्बन्ध या शरीर का अंग क्रय–विक्रय कोई अपराध नहीं होता। सरकार को इस सम्बन्ध में बने अनावश्यक कानून हटा लेना चाहिए। आत्महत्या कोई अपराध नहीं है। आत्महत्या के विरूद्ध कानून बनाना गलत है।

(181) व्यक्ति स्वयं अपनी सूझबूझ से ठीक कार्य करे उसे स्वशासन कहते हैं। व्यक्ति, परिवार या समाज की नाराजगी के डर से ठीक काम करे उसे अनुशासन कहते हैं। व्यक्ति दण्ड के डर से ठीक काम करे उसे शासन कहते हैं।

क्रिया–प्रतिक्रियाः–

(182) कोई कार्य सोच समझकर योजना पूर्वक किया जाता है उसे क्रिया कहते हैं। यदि उक्त क्रिया से प्रभावित कोई व्यक्ति कुछ करे उसे प्रतिक्रिया कहते हैं। क्रिया प्रारम्भ होती है और प्रतिक्रिया उत्तर। प्रतिक्रिया अल्पकालिक तथा तात्कालिक होती है। यदि कोई प्रतिक्रिया बहुत समय बाद सोच समझकर योजना पूर्वक की जाए तो वह क्रिया में बदल जाती है। प्रतिक्रिया भावनात्मक होती है जो बहुत तेजी से बढ़ती भी है और समाप्त भी होती है।

नीति, नीयतः–

(183) यदि किसी राज्य की नीयत और नीति दोनों ठीक हों तो बहुत अच्छा है, यदि नीयत ठीक है आर नीति गलत है तो समझाया जा सकता है। यदि नीति ठीक है और नीयत खराब, तब प्रतीक्षा की जा सकती है और यदि दोनों ही गलत है तो राज्य से मुक्त होने का प्रयास ही समाधान होता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में राज्य व्यवस्था की नीयत भी समाज को गुलाम बनाकर रखने की रही है और नीतियां भी। वर्तमान मोदी सरकार की नीयत तो ठीक है और, नीतियों की समीक्षा चल रही है।

व्यवहारः–

(184) किसी दूसरे के व्यवहार के आधार पर आठ स्थितियां उत्पन्न होती हैंः– 1. सहभागिता 2. सहयोग 3. समर्थन 4. प्रशंसा 5. समीक्षा 6. आलोचना 7. विरोध 8. शत्रुता। आठों की अलग–अलग सीमाएं होती हैं।

शराफत, समझदारी, चालाकीः–

(185) व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैंः– (1) शरीफ (2) समझदार (3) धूर्त, चालाक। शरीफ व्यक्ति कर्तव्य प्रधान होते हैं, त्याग करके प्रसन्न रहते हैं, भावना प्रधान होते हैं, समाज की चिन्ता करते हैं, श्रद्धा भाव रखते हैं, ठगे जाते हैं। चालाक अधिकारों की चिंता करते हैं, संग्रह से प्रसन्न रहते हैं, बुद्धि प्रधान होते हैं, तर्क अधिक करते हैं, व्यक्तिगत या परिवार की प्रगति की अधिक चिंता करते हैं, दूसरों को ठग लेते हैं। समझदार कर्तव्य और अधिकार, त्याग और संग्रह, भावना और बुद्धि, श्रद्धा और तर्क, परिवार और समाज के बीच संतुलन बनाए रखते हैं। शरीफ व्यक्ति धर्म की दिशा में अधिक आकर्षित होता है तो चालाक राजनीति की दिशा में। धूर्तता, चालाकी का चरम है तो मूर्खता शराफत का। हर चालाक व्यक्ति शराफत का अधिक से अधिक प्रचार करता है क्योंकि शराफत के कंधे पर चढ़कर ही चालाकी आगे बढ़ सकती है। यदि शराफत रुक जाए तो धूर्तता अपने आप रुक जाती है। हर चालाक व्यक्ति समझदार व्यक्ति के विरोध के लिए शरीफों का उपयोग करता है।

(186) जब समाज व्यवस्था विश्वसनीय हो तब शराफत उचित है। जब समाज व्यवस्था विश्वसनीय न हो तब शराफत, धूर्तता की पोषक है। वर्तमान समय में शराफत छोड़कर समझदारी की दिशा में बढ़ना उचित है।

(187) शरीफ आदमी निरभिमानी होता है, समझदार आदमी स्वाभिमानी होता है, धूर्त प्रत्यक्ष रूप में निराभिमानी और परोक्ष रूप में अभिमानी होता है।

तर्क तथा भावनाः–

(188) जब तर्क से कोई बात सिद्ध नहीं हो पाती तब भावनात्मक नारे या प्रचार का सहारा लिया जाता है। जब कोई व्यक्ति तर्क से अपनी बात नहीं समझा पाता तब

अपने कथन के साथ किसी महापुरूष का नाम जोड़ देता है। इस प्रकार के लोगों से बचना चाहिए।

प्रवृत्तिः—

(189) प्रवृत्ति के आधार पर मनुष्य तीन प्रकार के होते हैंः— (1) दैवीय (2) मानवीय (3) आसुरी। पहली श्रेणी को सामाजिक, दूसरी को असामाजिक तथा तीसरी को समाज विरोधी कहते हैं। किसी दुर्घटनाग्रस्त (एक्सीडेंट) ट्रेन के कराहते हुए यात्रियों की सेवा करने वाला सामाजिक, दुर्लक्ष करने वाला असामाजिक तथा लूट—पाट करने वाला समाज विरोधी होता है। सामाजिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन, असामाजिक का मार्गदर्शन तथा समाज विरोधी का दमन ही उचित है। समाज विरोधियों के हृदय परिवर्तन के प्रयास एक आदर्श तो है, व्यावहारिक नहीं। दुर्भाग्य से वर्तमान गांधीवादी या सर्वोदयी भी यही भूल कर रहे हैं जो समाज विरोधियों का हृदय परिवर्तन तथा शराब, जुआ, वैश्यावृत्ति को भय या कानून से नियंत्रित करना चाहते हैं।

सत्य और असत्यः—

(190) सत्य और असत्य का उपयोग अपनी योग्यता और आवश्यकता के आधार पर करना चाहिए, किसी सिद्धान्त के आधार पर नहीं। किसी कसाई की गाय भाग गई और वह आपसे पूछता है, आप मार्गदर्शक हैं तो न झूठ बोल सकते हैं, न सच बता सकते हैं, न बल प्रयोग कर सकते हैं। आप सिर्फ उसका हृदय परिवर्तन मात्र कर सकते हैं। इसी तरह रक्षक केवल शक्ति के भय का उपयोग कर सकता है। पालक झूठ बोलकर उसे विपरीत दिशा में भेज सकता है और सेवक नहीं देखने का झूठ बोलकर बच सकता है।

व्यवस्थाः—

(191) समाज विरोधी तत्वों पर समाज के नियंत्रण तथा समाज के सुचारू रूप से संचालन हेतु बनाई गई प्रकिया को व्यवस्था कहते हैं। किसी अच्छी से अच्छी व्यवस्था से भी अपनी व्यवस्था अच्छी होती हैं। यदि व्यवस्था करने वाले की नीयत संदेहास्पद हो तो ऐसी व्यवस्था को एक क्षण भी स्वीकार करना हमारी गुलामी का प्रतीक है। व्यवस्थाएं तीन तरह की होती हैंः— (1) परिवार की (2) राष्ट्र की और (3) समाज की।

(192) किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्ता के बीच दूरी जितनी अधिक होगी, कार्य की गुणवत्ता उतनी ही घटती जाएगी। इस दूरी को न्यूनतम करना और प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता ही लोक स्वराज्य है।

(193) किसी इकाई के अपने अधिकार किसी अन्य इकाई को प्रयोग के लिए इस तरह दिए जाते हैं कि उक्त अधिकार के सम्बन्ध में मूल इकाई के नियंत्रण का अधिकार

शून्य हो जाए तो उक्त अधिकार (**Right**) नई इकाई की शक्ति (**Power**) बन जाता है इस प्रक्रिया को केन्द्रीयकरण कहते हैं। ऐसी शक्ति जब उक्त इकाई द्वारा मूल इकाई को छोड़कर किसी अन्य नीचे की इकाई को प्रयाग के लिए दी जाती है तो उसे सत्ता का विकेन्द्रीयकरण कहते हं किन्तु यदि उक्त शक्ति पुनः उसी मूल इकाई को वापस कर दी जाती है ता उस अधिकार का विकेन्द्रीयकरण या सत्ता का अकेन्द्रीयकरण कहते हैं।

(194) स्वयं विकसित, दीर्घकालिक नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। समाज के नियमों के विपरीत आचरण करने वाले व्यक्ति को समाज विरोधी कहते हैं।

(195) राष्ट्र स्वयं में कोई स्वतंत्र इकाई नहीं बल्कि समाज का एक अंग होता है। राष्ट्र भौगोलिक सीमाओं से घिरे भू–भाग की व्यवस्था है जबकि समाज की ऐसी कोई सीमा नहीं होती। समाज व्यवस्था के टूट जाने से समाज की गलत परिभाषाएं बन गई और राष्ट्र समाज से बड़ा बन बैठा है। व्यवस्था में राष्ट्रीयता सहायक है और राष्ट्रवाद बाधक। राष्ट्रवाद विश्व व्यवस्था बनने में भी बाधक है। राष्ट्रवाद, न्याय और अपनत्व, हिंसा और अहिंसा, राष्ट्र और विश्व के बीच संतुलन नहीं रख पाता है।

(196) भारत में तो राज्य ही राष्ट्र बन बैठा है। सरकारीकरण को राष्ट्रीयकरण कहा जाता है जबकि राष्ट्र, समाज का भाग है और राज्य, समाज का सहायक। राज्य की एक सरकार होती है जबकि राष्ट्र की एक व्यवस्था।

(197) व्यवस्था चार प्रकार की होती हैः– (1) सुव्यवस्था (2) कुव्यवस्था (3) अव्यवस्था (4) स्वव्यवस्था। स्वव्यवस्था सबसे अच्छी मानी जाती है और कुव्यवस्था सबसे खराब। कुव्यवस्था से अव्यवस्था, अव्यवस्था से सुव्यवस्था और सुव्यवस्था से स्वव्यवस्था अच्छी होती है।

(198) वर्तमान विश्व में लोकतांत्रिक देशों में आंशिक रूप से स्वव्यवस्था है। वर्तमान भारत में आंशिक सुव्यवस्था है। मनमोहन सिंह के समय अव्यवस्था थी। चीन में पूरी तरह सुव्यवस्था है। मुस्लिम देशों में कहीं भी स्वव्यवस्था नहीं है। कही अव्यवस्था है तो कही सुव्यवस्था और कहीं कुव्यवस्था। उत्तरी कोरिया में कुव्यवस्था है।

2 संवैधानिक

प्रस्तावनाः—

(200) स्वतंत्रता व्यक्ति का मूल अधिकार है और समानता के प्रशासनिक प्रयत्न घातक। प्रस्तावना में समानता की जगह स्वतंत्रता शब्द होना चाहिए था। प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद शब्द बाद में की गई मिलावट है। यह मिलावट अधिक घातक सिद्ध हुई है। नई प्रस्तावना बनाते समय इन पांच उद्दश्यों को इसी क्रम में प्राथमिकता के आधार पर रखना चाहिएः— (1) सत्ता का अकेन्द्रीयकरण (2) अपराध नियंत्रण की गारंटी (3) आर्थिक अकेन्द्रीयकरण (4) श्रम शोषण मुक्ति (5) समान नागरिक संहिता।

समानताः—

(201) समानता की वर्तमान प्रचलित परिभाषा गलत है। असमानता प्राकृतिक होने से व्यक्तियों को समान बनाने का प्रयत्न पूरी तरह गलत है। भारत में समानता की नई परिभाषा यह हो सकती है कि किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित किसी सीमा रेखा से ऊपर वालों को समान स्वतंत्रता तथा नीचे वालों को समान सुविधा।

(202) समानता स्वयं में एक भ्रामक और अस्पष्ट शब्द है। कोई भी दो व्यक्ति कभी समान नहीं होते। प्राकृतिक संरचना के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव, क्षमता अलग—अलग होते हैं और इससे प्राप्त परिणाम भी अलग—अलग होते हैं। ऐसे भिन्न परिणामों को राज्य द्वारा समान करन का प्रयत्न न तो संभव है और न ही उचित।

(203) समानता का अर्थ व्यक्तियों के आपसी संव्यवहार में समानता न होकर राज्य और व्यक्तियों के बीच के आपसी संव्यवहार में समानता होनी चाहिए। राज्य और राजनीति से जुड़े लोग, लोगों में असमानता की भावना पैदा करने, उसकी असमानता दूर करने के प्रयास तथा उसे कभी समान न होने देने में उसी तरह लगे रहते हैं जैसे बिल्लियों के बीच बंदर।

(204) आर्थिक असमानता पर नियंत्रण आवश्यक है।. सम्पत्ति पर समान प्रतिशत से 'कर' लगाकर उक्त राशि का सबके बीच समान वितरण दोनों का सामंजस्य स्थापित कर सकता है।

(205) आर्थिक सामाजिक असमानता भी घातक है और अधिकारों की असमानता भी। किन्तु अधिकारों की असमानता, आर्थिक सामाजिक असमानता से कहीं अधिक घातक है। एक सर्वोच्च धनवान से किसी धनहीन को उतना खतरा नहीं जितना किसी तानाशाह से सामान्य व्यक्ति को हो सकता है; क्योंकि तानाशाह के पास पुलिस, सेना और कानून की भी शक्ति होती है। वर्तमान समय में सत्ता के खेल के लिए सामाजिक आर्थिक असमानता के नारे का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। एक भी ऐसा संगठन

या व्यक्ति नहीं दिखता जो सामाजिक आर्थिक असमानता के विरूद्ध तो आंदोलन करे, किन्तु जिसका राजनैतिक उद्देश्य न हो।

(206) सामाजिक, आर्थिक असमानता दूर करना मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरों का अधिकार नहीं। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है और शासन का दायित्व। दुर्भाग्य से सामाजिक आर्थिक असमानता दूर करना कमजोरों का अधिकार प्रचारित किया जा रहा है और अधिकारों की असमानता दूर करने की कोई चर्चा ही नहीं करता।

(207) स्वतंत्रता और समानता का इस तरह सामंजस्य हो कि दोनों एक–दूसरे के पूरक हों।

(208) प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक एक–दूसरे से स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करता है। राज्य को कभी भी किसी की सहायता करके पक्षपात नहीं करना चाहिए। राज्य इस समान स्वतंत्रता में असमानता पैदा करने लिए समानता शब्द का दुरूपयोग करता है। असमानता प्राकृतिक है। राज्य को कोई हस्तक्षेप तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कोई व्यक्ति प्रतिस्पर्धा करने योग्य है।

संविधानः–

(210) तंत्र के अधिकतम तथा लोक के न्यूनतम अधिकारों की सीमा निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते हैं। वर्तमान विश्व में प्रचलित संविधान की परिभाषाएं या तो अधूरी हैं या गलत। तंत्र के न्यूनतम तथा व्यक्ति के अधिकतम अधिकारों की सीमा निश्चित करने वाले दस्तावेज को कानून कहते हैं। संविधान समाज और राज्य अर्थात लोक और तंत्र के बीच अधिकारों की सीमाएं निर्धारित करता है तथा कानून तंत्र और व्यक्ति के बीच के अधिकारों की सीमाएं।

(211) सुचारू व्यवस्था के लिए प्रत्येक इकाई का संविधान होना आवश्यक होता है, वह संविधान चाहे लिखित हो अथवा अलिखित। परिवार स विश्व तक की प्रत्येक इकाई का अपना अलग अलग संविधान हो सकता है।

(212) भारत की अधिकांश अव्यवस्था का कारण भारत का वर्तमान संविधान है। भारत का संविधान विश्व के अन्य लोकतांत्रिक संविधानों की तुलना में सबसे अधिक अनुपयुक्त संविधान है। इसमें निम्न गलतियां हैः–(1) बहुत बड़ा है। (2) भाषा द्विअर्थी है। **Interpretations** बहुत अधिक हैं। (3) प्रारम्भ में सैद्धांतिक बात लिखने के बाद ''परंतु'' लिखकर उसे पूरी तरह बदल दिया गया, **Contradictions** बहुत अधिक हैं। (4) वर्ग विद्वेष बढ़ाने में सक्रिय रहा। (5) संसदीय लोकतंत्र को संसदीय तानाशाही में बदलने का आधार बना। (6) भारतीय व्यवस्था के मूल आधार परिवार, गांव को संविधान से निकालकर धर्म, जाति को संवैधानिक मान्यता दे दी। (7) समाज के अस्तित्व को अस्वीकार करके राज्य को ही अंतिम इकाई घोषित कर दिया। (8) अपराध नियंत्रण

की अपेक्षा जनकल्याण को अधिक प्राथमिकता दी। (9) राज्य की भूमिका प्रबंधक की न होकर कस्टोडियन के रूप में निर्धारित की।

(213) (1) भारत का गलत संविधान बनाने के लिए कुछ परिस्थितियां दोषी रही तो कुछ पंडित नेहरू और डॉ0 अंबेडकर। संघ परिवार स्वतंत्रता संघर्ष से दूर रहा। गांधी हत्या के बाद उनकी विश्वसनीयता और कम हुई। नेहरू व अंबेडकर को हिंदुत्व से भी चिढ़ थी और भारतीय परम्पराओं से भी। दोनों ने आंख मूंदकर विदेशों की नकल करके संविधान बना दिया। (2) भारतीय संविधान भारतीय राजनीति का कवच है। इस कवच का भेदन किए बिना हम राजनीति की उच्छृंखलता पर कोई अंकुश नहीं लगा सकते। 3. संविधान का मूल स्वरूप बनाना समाजशास्त्र का विषय है। संविधान का मूल ढांचा कभी भी राजनीतिशास्त्र का विषय नहीं रहा है और न होना चाहिए। भारतीय संविधान के मूल तत्व भी राजनेताओं ने ही तय किए और भाषा भी उन्होंने ही तय कर दी। संविधान के मूल तत्व तय करने में समाजशास्त्रियों की कोई भूमिका नहीं रही। इस कार्य में संलग्न लोग या तो अधिवक्ता थे या आंदोलन से निकले राजनीतिज्ञ। संविधान निर्माण में गांधी तक को किनारे रखा गया जो राजनीति और समाजशास्त्र के समन्वित रूप थे। यही कारण था कि राजनेताओं ने संसद को प्रबंधक के स्थान पर अभिरक्षक (कस्टोडियन) का स्वरूप दिया। यही नहीं, उन्होंने तो संसद के अभिरक्षक स्वरूप की कोई समय सीमा तय न करके देश के साथ भारी षड़यंत्र किया जिसका परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं। (4) भारतीय संविधान ने संसद को तीनों अधिकार प्रदान कर दिए। हम जिसे चुनते हैं, उसे पांच वर्ष के बीच में न हटा सकते हैं न बदल सकते हैं। हम संसद के अधिकारों की न व्याख्या कर सकते हैं, न सीमा रेखा बना सकते हैं, न ही कटौती कर सकते है। जो करोड़ो लोग संविधान निर्माताओं की व्याख्या के अनुसार इतनी भी योग्यता नहीं रखते कि परिवार या गांव की ठीक से व्यवस्था कर सकं उन्हीं अयोग्य लोगों के बीच से चुना हुआ व्यक्ति रातों रात सारे देश के लिए कानून बनाने के लिए योग्य घोषित हो जाता है। (5) न्याय और सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए थी किन्तु न्याय और सुरक्षा की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों को प्राथमिकता दी गई। (6) व्यक्ति, परिवार और गांव को व्यवस्था की ईकाई न मानकर धर्म, जाति, भाषा, लिंग के आधार पर वर्ग निर्माण को प्रोत्साहित किया गया। इनकी मुठ्ठी में संविधान बन्द है जिसके प्रति हर भारतीय के मन में आज भी सम्मान है। हमारा भगवान रूपी संविधान तंत्र की एक मुठ्ठी में कैद है। वह संविधान इनके लिए दूसरी ओर ढाल का काम करता है। उसे स्वतंत्र होना चाहिए। (7) भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैरकानूनी कार्य भी अपराध है और अनैतिक भी। इस संदेश का दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना से ग्रसित हो गया। भारतीय संविधान ने जनकल्याणकारी कार्यो की प्राथमिकता घोषित करके दायित्वों को कमजोर कर दिया। (8) संविधान की मूलभूत अवधारणा के अनुसार राज्य, समाज का मैनेजर होना चाहिए, संरक्षक (कस्टोडियन) नहीं। भारतीय संविधान ने राज्य को कस्टोडियन की भूमिका प्रदान कर दी।

(214) किसी भी संविधान के दो गुण होते हैं जो उसे संतुलित बनाते हैंः—(1) वह न तो इतना लचीला हो कि शासन उच्छृंखल हो जाए। (2) वह न इतना कठोर हो कि शासन ठीक से नियन्त्रण ही न कर सके। किसी भी संविधान की सफलता की एक मात्र कसौटी शासन द्वारा व्यक्ति के मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी होती है। यदि चरित्रपतन होता है तो वह संविधान की विफलता मानी जाएगी। चरित्र पतन के दो कारण हो सकते हैं, समाज पर कठोर नियंत्रण जिससे सत्ताधीशों का चरित्र गिर जाए अथवा नियंत्रण का अभाव जिससे नागरिकों का चरित्र गिरता है। भारतीय संविधान दोनों ही कसौटियों पर चरित्र पतन के लिए उत्तरदायी है।

(215) हम भारतीय संविधान के कुछ परिणामों की व्याख्या करेंः— (1) भारतीय संविधान का पहला परिणाम यह दिख रहा है कि तंत्र शरीफों, गरीबों, ग्रामीणों, श्रमजीवियों के विरूद्ध धूर्तो, अमीरों, शहरियों, बुद्धिजीवियों का मिलाजुला षड्यंत्र दिखने लगा है। (2) स्पष्ट दिख रहा है कि संसद एक जेल खाना है जिसमं हमारा भगवान रूपी संविधान कैद है। संविधान एक ओर तो संसद की ढाल बन जाता है तो दूसरी ओर संविधान संसद की मुठ्ठी में कैद भी है। (3) न्यायपालिका और विधायिका के बीच ऐसी अधिकारो की छीना—झपटी दिख रही है जैसे लूट के माल के बंटवारे में दिखती है। (4) लोक और तंत्र के बीच दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। लोक हर क्षेत्र मे तंत्र का मुखापेक्षी हो गया है। यहा तक कि तंत्र और लोक के बीच शासक और शासित की भावना तक घर कर गई है। (5) समाज के हर क्षेत्र में वर्ग समन्वय के स्थान पर वर्ग विद्वेष बढ़ रहा है। (6) तंत्र का प्रत्येक अंग हर कार्य में समाज को दोष देने का अभ्यस्त हो गया है। तंत्र का काम सुरक्षा और न्याय देना है, किन्तु तंत्र इसके लिए भी लोक को ही दोषी ठहराता है। यहा तक कि कुछ वर्ष पूर्व भारत के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और विपक्ष के नेता तक ने कहा था कि संविधान दोषी नही है बल्कि उसका ठीक ठीक पालन नहीं होता है। इसलिए पालन न करने वाले दोषी हैं। (7) दोषी संविधान है, व्यवस्था है, तंत्र है, और समाज में हम सुधरेंगे—जग सुधरेगा जैसा गलत विचार प्रसारित किया जा रहा है। (8) भारत मे लगातार अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। (9) भौतिक विकास तेज गति से हो रहा है और उससे भी अधिक तेज गति से नैतिक पतन हो रहा है।

सरकारः—

(216) कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के समन्वित स्वरूप को तंत्र, राज्य अथवा सरकार अथवा शासन कहते हैं। प्रजातंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका एक दूसरे के पूरक भी होते हैं और **(Check and Balance)** सन्तुलन स्थापित करने वाले भी। राज्य के तीनों अंग पूरक तथा **(Balancing)** संतुलन बनाने का कार्य न करके शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लग जाते हैं तो राज्य कमजोर हो जाता है और यदि यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे तो प्रजातंत्र की विश्वसनीयता

समाप्त हो जाती है। भारत में राज्य के तीनों अंग शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लगे हैं।

(217) संविधान की सीमाओं में रहकर कानून के द्वारा कार्यपालिका को निर्देश देना विधायिका का दायित्व है। विधायिका संविधान द्वारा इंगित सीमाओं का किसी भी स्थिति में अतिक्रमण नहीं कर सकती है।

(218) हमारे संविधान निर्माताओं ने पक्षपातपूर्वक राज्य को एकपक्षीय शक्तिशाली बना दिया। अब देश के समाजशास्त्रियों को मिलकर संविधान के मूल तत्वों पर विचार मंथन करके कुछ निष्कर्ष निकालने चाहिए तथा राज्य और समाज के अधिकारों की सीमाओं की पुनः व्याख्या का आंदोलन शुरू करना चाहिए।

संविधान संशोधनः—

(220) संविधान, तंत्र पर समाज का प्रतिनिधित्व करता है। सबसे ऊपर समाज, समाज के नीचे संविधान, संविधान के नीचे तंत्र, तंत्र के नीचे कानून और कानून के नीचे व्यक्ति होता है। जबकि वर्तमान संविधान के अनुसार समाज को किनारे करके सबसे ऊपर तंत्र , तंत्र के नीचे संविधान, संविधान के नीचे कानून और कानून के नीचे व्यक्ति होता है। संविधान समाज के द्वारा बनाया जाता है। तंत्र, संविधान के अंतर्गत कार्य करने के लिए बाध्य होता है इसलिए संविधान संशोधन में तंत्र की कोई भी भूमिका असंवैधानिक होती है। विधायिका तंत्र का एक महत्वपूर्ण विभाग है। भारतीय संविधान में विधायिका को किसी भी स्थिति में संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार देना उचित नहीं था। यह बहुत बड़ी भूल है। भारत में विधायिका ने कई बार इस भूल का दुरूपयोग किया है।

(221) संविधान संशोधन की वर्तमान दोष पूर्ण प्रक्रिया में इस पकार संशोधन होना चाहिए किः— (1) विधायिका के इन अधिकारों पर अंकुश (**Check**) लगे। (2) राजनेताओं पर भी अंकुश (**Check**) हो। (3) संविधान संशोधन के अधिकारों का दुरूपयोग न हो।

(222) संविधान संशोधन के लिए कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें तंत्र का कोई हस्तक्षेप न हो। आदर्श लोकतंत्र में तो संविधान संशोधन में तंत्र की भूमिका शून्य होनी चाहिए किन्तु वर्तमान स्थिति में निम्न तरीके हो सकते हैंः— (1) जनमत संग्रह (2) मतदाताओं की एक तात्कालिक संख्या निकालकर जनमत संग्रह (3) संविधान सभा (4) प्राचार्य सभा (5) ग्राम सभा (6) केंद्र सभा। संविधान संशोधन के लिए वर्तमान संसद और प्रस्ताविक तरीके की संयुक्त सहमति के बाद ही संविधान संशोधन होना चाहिए। संविधान संशोधन के अतिरिक्त यदि कोई बहुत विवादास्पद विषय हो तो उसे जनमत संग्रह के द्वारा हल करना चाहिए।

समान नागरिक संहिताः–

(224) समान नागरिक संहिता का अर्थ है– ''भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए समान कानून। भारत अपनी सम्पूर्ण जनसंख्या का देश होगा; धर्म, जाति, भाषा, लिंग अथवा राज्यों का देश नहीं।

(225) समान नागरिक संहिता तथा समान आचार संहिता (**Common Civil Code**) तथा (**Common Code of Conduct**) बिल्कुल भिन्न विषय हैं। दोनों का अंतर न समझने के कारण से भ्रम होता है। नागरिक संहिता नागरिक के लिए होती है, राजनैतिक व्यवस्था से जुड़ी होती है, सामूहिक होती है जबकि आचार संहिता व्यक्ति की होती है, व्यक्तिगत होती है, समाज तथा राज्य के दबाव से मुक्त होती है। नागरिक संहिता प्रत्येक नागरिक के लिए समान होती है तथा आचार संहिता समान होना संभव नहीं है। व्यक्ति का व्यक्तिगत आचरण तब तक आचार संहिता है जब तक वह किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी रूप में प्रभावित न करे। यदि किसी व्यक्ति का कोई आचरण किसी अन्य व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना प्रभावित करता है तब नागरिक संहिता लागू होती है। नागरिक व्यवहार ही नागरिक का सामाजिक व्यवहार होता है। इस सम्बन्ध में समाज के प्रतिनिधि के रूप में राज्य हस्तक्षेप भी कर सकता है और नियम भी बना सकता है। धर्म, जाति, भाषा, व्यवसाय, लिंग आदि के आधार पर किए गए कार्य तब तक व्यक्तिगत आचरण हैं जब तक वे किसी अन्य के वैसे ही आचरण में कोई हस्तक्षेप न करे। शासन या समाज को व्यक्ति के ऐसे मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(226) समाज में टकराव तथा वर्ग विद्वेष दूर करने हेतु समान नागरिक संहिता आवश्यक है। समान नागरिक संहिता तत्काल लागू कर देने से महिलाओं, आदिवासियों, हरिजनों, विकलांगो, गरीबों तथा वृद्धों पर बुरा असर पड़ सकता है। इस प्रभाव को ठीक करने के लिए निम्न कार्य किए जा सकते हः– (1) महिलाओं को परिवार की सम्पत्ति में समान अधिकार देना। (2) आदिवासियों, हरिजनों को श्रम मूल्य वृद्धि द्वारा। (3) विकलांगों तथा वृद्धों को शासन के पास बची राशि सभी नागरिकों में समान रूप से बांटकर तथा ऐसे असहाय जो अकेले हों ऐसे लोगों के सम्पूर्ण भरण–पोषण का दायित्व लेकर।

(227) संघ परिवार की समान नागरिक संहिता सिर्फ मुसलमानों पर अंकुश लगाने तक सीमित है। समान नागरिक संहिता लागू होने पर गो–हत्या बंद करने की मांग निरर्थक हो जाएगी। भाजपा यह स्वीकार नहीं कर सकती। समान नागरिक संहिता मुसलमानों के व्यक्तिगत व्यवहार में बाधक नहीं है क्योंकि विवाह राज्य का विषय न होकर व्यक्तियों का आपसी पारिवारिक या सामाजिक विषय होता है। समान नागरिक संहिता लागू होते ही हिन्दू कोड बिल सब प्रकार के आरक्षण तथा विशेषाधिकार के वर्तमान प्रचलित कानून अपने आप समाप्त हो जाएंगे।

(228) यदि कोई व्यक्ति समाज निर्मित किसी आचार संहिता का उल्लंघन करे तो समाज उस व्यक्ति का बहिष्कार कर सकता है किंतु उसे दण्ड नहीं दे सकता। यदि व्यक्ति नागरिक संहिता का उल्लंघन करे तब राज्य दण्ड दे सकता है। नागरिक संहिता बनाने में राज्य को किसी प्रकार का वर्ग–भेद नहीं करना चाहिए। वर्ग–भेद हमेशा घातक होता है।

(229) भारत में व्याप्त अधिकांश सामाजिक समस्याओं का समाधान समान नागरिक संहिता में ही है। सरकारें समस्याओं को जीवित रखने के उद्देश्य से समान नागरिक संहिता से तो दूरी बनाकर रखती हैं तथा आचार संहिता में हस्तक्षेप करती हैं।

भाषाः–

(230) अपने मनोभाव और विचार दूसरे व्यक्ति तक ठीक उसी अर्थ में पहुँचाने के माध्यम को भाषा कहते हैं। भाषा सर्वदा श्रोता की होती है, वक्ता की नहीं। भाषा सर्वदा ऐसी होनी चाहिए जिससे श्रोता, वक्ता के मनोभावों को आसानी से समझ सके।

(231) भाषा को राष्ट्र, संस्कृति या धर्म के साथ जोड़ना गलत भी है और हानिकारक भी। अटल जी का संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी भाषा का प्रयोग करना हानिकारक प्रयास था।

(232) किसी इकाई को किन्हीं अन्य इकाइयों के आपसी संवाद की भाषा तय करने का कोई अधिकार नहीं है। उक्त इकाई अपने संवाद की भाषा निश्चित करने हेतु स्वतंत्र है।

राइट टू रिकॉलः–

(233) नियुक्तिकर्ता को पूरा अधिकार होता है कि वह नियुक्त को कभी भी निलंबित या बर्खास्त कर सकता है। कोई भी सांसद, लोक अर्थात जनता द्वारा नियुक्त होता है अतः जनता को उसे वापस बुलाने का स्वाभाविक अधिकार होता है। वर्तमान व्यवस्था ने जनता का यह अधिकार छीनकर गलत किया है। जयप्रकाश से लेकर अन्ना हजारे तक ने कई बार उसकी मांग की किन्तु राजनेताओं ने इसे अव्यावहारिक बताकर अस्वीकार कर दिया।

(234) राइट टू रिकॉल के कई तरीके हो सकते हैं। किसी निर्वाचित सांसद के क्षेत्र केः– (1) विकास खण्ड प्रमुखों के प्रस्ताव पर सरपंचो द्वारा मतदान या जनमत संगह द्वारा। (2) आम चुनाव के साथ कुछ ऐसे लोगों का चयन जिनके प्रस्ताव पर जनमत संग्रह या रेन्डम मतदान द्वारा। इसी तरह कोई अन्य तरीका भी हो सकता है किन्तु

जब तक कोई जिम्मेदार इकाई राइट टू रिकॉल के लिए सहमत न हो तब तक तरीके पर विचार करना घातक है।

(235) राइट टू रिजेक्ट की मांग राइट टू रिकॉल की मांग को कमजोर करने के उद्देश्य से राजनेताओं ने कराई और लागू कर दिया जबकि उसका कोई महत्व नहीं है। राइट टू रिकॉल निर्वाचन के बाद का भय है और रिजेक्ट निर्वाचन पूर्व की सतर्कता। रिजेक्ट की मांग करने वालों की नीयत ठीक नहीं थो।

दल–बदल कानूनः–

(236) दल बदल कानून भारतीय लोकतंत्र का सबसे अधिक घातक, अलोकतांत्रिक तथा असंवैधानिक कानून है। इस कानून के कारण राजीव गांधी का इतिहास हमेशा कलंकित रहेगा, क्योंकि कानून सांसदों का जनप्रतिनिधित्व छीनकर उसे दल प्रतिनिधि बना देता है। यह कानून सांसदों के संसद में वाक् स्वातंत्र्य का संवैधानिक अधिकार छीन लेता है, निर्वाचित जनप्रतिनिधि को रोबोट, गुलाम या भेड़–बकरी के समान बना देता है, दलों में आंतरिक लोकतंत्र को समाप्त करके तानाशाही को बढ़ाता है तथा भ्रष्टाचार का केंद्रीयकरण करता है। अब राजनतिक क्रय–विक्रय और सौदेबाजी खुदरा में न होकर थोक में ही हो सकता है।

पर्सनल लाः–

(237) प्रत्येक व्यक्ति के पर्सनल लो में कोई सरकार न कोई कानून बना सकती है न ही हस्तक्षेप कर सकती है। पर्सनल लो अर्थात् स्वनिर्णय प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। मुसलमान जिसे पर्सनल लॉं कहते हैं वह सामुदायिक अधिकार है, व्यक्तिगत नहीं। इसलिए मुस्लिम कानूनों को मुस्लिम लॉ कहना चाहिए पर्सनल लॉ नहीं। महिला और पुरुष के व्यक्तिगत अधिकारो में कोई भेद नहीं हो सकता। सरकार तलाक पर कोई कानून नहीं बना सकती क्योंकि किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय तलाक की स्वाभाविक स्वतंत्रता होती है।

हिन्दू कोड बिलः–

(238) हिन्दू कोड बिल भारतीय समाज व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने का घातक प्रयास रहा है। यह कानून समाज की छाती में एक कील के समान चुभा हुआ है। हिन्दू कोड बिल पंडित नेहरू और डॉ अंबेडकर की सांप्रदायिक सोच से पैदा हुआ कानून है। हिन्दू कोड बिल सांप्रदायिक है, असंवैधानिक है, समानता के विरुद्ध तथा बुरी नीयत से लाया गया कानून है। हिन्दू कोड बिल हमारी परिवार व्यवस्था को तोड़ने में पूरी तरह सहायक है। हिन्दू कोड बिल का कोई भी अंश स्वीकार करने योग्य नहीं है।

अधिकारः–

(240) व्यक्ति और नागरिक अलग–अलग होते हैं। व्यक्ति समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्र का।

(241) अधिकार तीन प्रकार के होते हैंः– (1) प्राकृतिक अथवा मौलिक (2) संवैधानिक (3) सामाजिक। मौलिक अधिकार व्यक्ति के होते हैं, संवैधानिक अधिकार नागरिक के होते हैं तथा सामाजिक अधिकार दोनों के होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मूल अधिकार समान होते हैं। संवैधानिक और सामाजिक अधिकार कम–ज्यादा हो सकते हैं। व्यवस्था के लिए हम दूसरे को अपनो सहमति से शक्ति देते हैं अधिकार नहीं। शक्ति को अधिकार कहना गलत है।

(242) प्रत्येक व्यक्ति की हर समय तीन अलग अलग भूमिकाएं होती हैं। असीम स्वतंत्रता मौलिक अधिकार होने से वह हर समय व्यक्ति रहता है, सम्पूर्ण मानवीय व्यवस्था से जुड़ने के कारण वह समाज का अंग रहता है तथा किसी राष्ट्र के संविधान से जुड़ा होने से नागरिक होता है। तीनों भूमिकाओं की अपनी–अपनी सीमा होती है। कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी भूमिका की सीमा नहीं तोड़ सकता। यदि किसी व्यक्ति या किसी इकाई को गुलामी महसूस हो तथा गुलामी से मुक्ति का कोई संवैधानिक मार्ग न दिखे तब व्यक्ति को अधिकारों के प्रति जागृत होना या जागत करना चाहिए अन्यथा अधिकारों के लिए जागृत करना घातक है। कर्तव्य के प्रति जागृत करना चाहिए।

(243) राज्य के दायित्व और कर्तव्य अलग अलग होते हैं। मौलिक अधिकारों की सुरक्षा राज्य का दायित्व होता है और संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा उसका कर्तव्य। सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा समाज का दायित्व नहीं होता, कर्तव्य होता है।

मूल अधिकारः–

(244) व्यक्ति के वे प्रकृति प्रदत अधिकार जिन्हें राज्य तथा संविधान सहित कोई भी अन्य उसकी सहमति के बिना तब तक कोई कटौती न कर सके जब तक उसने किसी अन्य व्यक्ति के वैसे ही अधिकारों का उल्लंघन न किया हो, उन्हं मूल अधिकार कहते हैं। दुनिया में मूल अधिकारों की जो परिभाषा बनी है वह या तो गलत है या अपूर्ण। भारतीय संविधान में जिस प्रकार मूल अधिकार की व्याख्या की गई है वह संविधान निर्माताओं की अज्ञानता का स्पष्ट प्रमाण है।

(245) असीम स्वतंत्रता क रूप में व्यक्ति का केवल एक मूल अधिकार होता है। इस स्वतंत्रता के चार भाग होते हैंः– (1) जीने की स्वतंत्रता (2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (3) सम्पत्ति की स्वतंत्रता (4) स्वनिर्णय की स्वतंत्रता। मूल अधिकार व्यक्ति को गलती करने की स्वतंत्रता भी देता है।

(246) विश्व भर में व्यक्ति के मूल अधिकार समान होते हैं। इनमें संवैधानिक व्यवस्थाएं कभी कोई बदलाव नहीं कर सकती है। मूल अधिकार प्राकृतिक होते हैं, संविधान प्रदत्त नहीं। संविधान मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र देता है।

(247) मूल अधिकार व्यक्ति के व्यक्तिगत होते हैं सामूहिक नहीं। सामूहिक अधिकार संवैधानिक या सामाजिक होते हैं। वर्तमान समय में मूल अधिकारों में और वृद्धि की मांग परिभाषा की अस्पष्टता का परिणाम है। सम्पत्ति को मूल अधिकार के रूप में स्वीकार करने से जो क्षति होगी, इसे अस्वीकार करने से और अधिक क्षति होगी। यदि सम्पत्ति को मूल अधिकार से हटाया गया तो राज्य को सम्पत्ति के साथ छेड़छाड़ करने के असीम अधिकार मिल जाएंगे।

(248) संविधान जिन अधिकारों को समय–समय पर दे या ले सकता है वे संवैधानिक अधिकार होते हैं, मूल नहीं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार सरीखे अनेक अधिकार संवैधानिक होते हैं मौलिक नहीं। नासमझ लोग इन्हें मौलिक अधिकार मान लेते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव होता है कि वह दूसरों से तो अधिकतम स्वतंत्रता की इच्छा रखता है किन्तु वह यह भी चाहता है कि दूसरे लोग उसकी इच्छानुसार ही संचालित हों, स्वतंत्रता से नहीं। यहो अवधारणा विवाद का मुख्य कारण बनती है।

अभिव्यक्तिः–

(249) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। कोई भी व्यवस्था किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति की सीमा नहीं बना सकती। जब किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी अन्य की स्वतंत्रता से टकराती है तब राज्य या समाज की भूमिका शुरू होती है अन्यथा नहीं।

आपातकालः–

(250) किसी समस्या विशेष से निपटने में सामान्य उपायों की विफलता निश्चित होने पर व्यवस्था को प्रदत्त विशेष अधिकारों की परिस्थितियों को आपातकाल कहते हैं। आपातकाल की तीन परिस्थितियां होती हैः– (1) राष्ट्रीय आपातकालः– जब विदेशी आक्रमण का गंभीर खतरा हो। (2) आर्थिक आपातकालः– जब आर्थिक असमानता अनियंत्रित हो जाए अथवा श्रम और बुद्धि के मूल्य और सम्मान मं दूरी बहुत अधिक हो जाए। (3) सामाजिक आपातकालः– जब समाज के लोग अपराधियों के विरूद्ध गवाही देने से डरते हों तथा अपराध नियंत्रण सम्भव नहीं हो रहा हो। राष्ट्रीय आपातकाल में प्रत्येक परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दस प्रतिशत तक आपात–कर लगाने का अधिकार व्यवस्था को होना चाहिए। आर्थिक आपातकाल में प्रत्येक परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दो प्रतिशत आपात–कर लगाकर प्रत्येक नागरिक में बराबर–बराबर बांटने का अधिकार व्यवस्था को होना चाहिए। सामाजिक आपातकाल में उस जिले के कलेक्टर, एस.पी. और जिला सत्र न्यायाधीश को मिलकर गुप्त मुकद्मा प्रणाली शुरू करने की स्वीकृति देने का अधिकार होना चाहिए।

(251) किसी भी प्रकार के आपातकाल की घोषणा सिर्फ संवैधानिक आधार पर ही की जा सकती है। राष्ट्रीय या आर्थिक आपातकाल का प्रस्ताव मंत्रिमंडल, राष्ट्रपति को दे

सकता हैं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान न्यायाधीश सर्वसम्मति से घोषणा कर सकते हैं। राष्ट्रीय आपातकाल में पूरी व्यवस्था राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान न्यायाधीश तथा प्रधानमंत्री मिलकर करेंगे तथा दो माह बाद कानून के अनुसार आगे का काम करेंगे। सामाजिक आपातकाल में दो माह में जिला सभा या किसी ऊपर की सभा से सहमति आवश्यक होगी।

(252) किसी भी प्रकार के आपातकाल में व्यक्ति की सहमति के बिना उसके मौलिक अधिकारों में कोई कटौती नहीं की जा सकती।

संगठन संस्थानः—

(253) संगठन विचारों की कब्र होता है, यह मजबूतों से सुरक्षा के उद्दश्य से बनता है और कमजोरों का शोषण करता है। सभी संगठन अधिक शक्तिशाली संगठनों से सुरक्षा तथा असंगठितों के शोषण की योजना में लगे रहते हैं। जब समाज में असुरक्षा का भाव हो तब संगठन अधिक बनते हैं। एक सामान्य सिद्धान्त है कि संगठन में शक्ति होती है। दो संगठित व्यक्ति दस असंगठितों पर भारी पड़ते हैं। संगठन में न्याय की जगह अपनत्व तथा कर्तव्य की जगह अधिकारों के लिए संघर्ष भाव रहता है। संगठन हमेशा कमजोर लोग मजबूतों से सुरक्षा के उद्दश्य से बनाते हैं तो संस्था मजबूत लोग कमजोरों की सहायता के लिए बनाते हैं। संस्था में कर्तव्य और त्याग भाव होता है, अधिकार और शक्ति नहीं। संस्थाएं समाज सहायक होती हैं और संगठन ब्लैक मेलर। संगठन में तानाशाही होती है, संस्था में लोकतंत्र। संगठन में अनुशासन होता है, संस्था में स्वशासन। संगठन में मौलिक अधिकार संयुक्त होते हैं तो संस्था में अलग अलग। गिरोह और संगठन में इतना ही फर्क होता है कि गिरोह अपराध अधिक करता है तो संगठन सिर्फ शोषण और ब्लैकमेल तक सीमित रहता है। वर्तमान भारत में संगठन मजबूत हो रहे हैं और संस्थाएं कमजोर हो रही है। संगठन में शक्ति और विस्तार के अधिक अवसर रहते हैं तो संस्थाओं में सम्मान और क्षरण। इस्लाम, सावरकरवादी, साम्यवाद का स्वरूप संगठनात्मक है तो गांधीवादी, आर्यसमाज, गायत्री परिवार आदि का स्वरूप संस्थागत। गांधीवादी संस्थाएं, आर्यसमाज, गायत्री परिवार का विस्तार या तो रुक गया है या नीचे की ओर है।

(254) संगठित वर्गो और असंगठित व्यक्तियों के बीच की दूरी लगातार बढ़ रही हैं और संगठन बनाकर इस दूरी को कम नहीं किया जा सकता क्योंकि ये संगठन तो स्वयं ही टकराव, घृणा, द्वेष आदि के आधार पर जीवित हैं। अतः इनकी संगठन क्षमता और उपयोगिता को चुनौती देनी होगी। धर्म, जाति, भाषा, लिंग, राष्ट्र, क्षेत्र, उम्र, आर्थिक स्थिति और उत्पादन उपभोग संगठन के असामाजिक आधार हैं। इन्हें कमजोर करना होगा। प्रवृत्ति ही संगठन का उपयुक्त आधार है। सभी अच्छे लोगों को समाज विरोधी तत्वों के विरूद्ध संगठित हो जाना चाहिए। वर्तमान संगठन ऐसे संगठन में बाधक है।

हड़तालः—

(255) अधिकांश हड़तालें संगठित समूहों द्वारा अधिकाधिक अधिकार प्राप्ति के लिए होती हैं तथा अन्य असंगठितों के शोषण का माध्यम है। अधिकांश हड़तालें या चक्का जाम व्यवस्था को ब्लैकमेल करने के उद्‌देश्य से होते हैं। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ये दूसरों को कष्ट देते हैं। जब अपने अधिकारों की प्राप्ति का कोई भी प्रजातांत्रिक मार्ग शेष न हो तभी हड़ताल चक्का जाम या आन्दोलन का मार्ग अपनाया जा सकता है। गुलाम भारत में यह उचित था और प्रजातंत्र भारत में अनावश्यक। अधिकांश आन्दोलनों में समाज विरोधी तत्वों का वर्चस्व हो रहा है। पुराने समय में राजनीतिक दल या सामाजिक संस्थाएं समस्याओं के समाधान के लिए हड़ताल या आन्दोलन का सहारा लेती थी। अब हड़तालों या आन्दोलनों के लिए समस्याएं खोजी जाती है।

(256) हड़ताल करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। हड़ताल कराना राष्ट्र विरोधी कार्य तो चक्का जाम अपराध होता है। हड़ताल कराने या चक्का जाम को पूरी तरह प्रतिबंधित कर देना चाहिए। लोकतंत्र में हड़ताल या चक्का जाम पूरी तरह गलत कार्य है किन्तु सभी संगठन समाज और राज्य को ब्लैकमेल करने के लिए इनका सहारा लेते हैं।

(257) भारत का सरकारी कर्मचारी यह मानता है कि जब भारत के राजनेता दोनों हाथों से देश लूट रहे हैं तो लूट के माल में उनका हिस्सा क्यों नहीं होना चाहिए!

सैनिकः—

(258) सैनिक दो तरह के होते हैंः— (1) देश के लिए लड़ते हैं। (2) सरकारी नौकरी करते हैं। जो देश के लिए लड़ते हैं वे कभी किसी आंदोलन में नहीं आते। वे कभी सुविधाओं की मांग नहीं करते। जो नौकरी करते हैं वे हमेशा सुविधा व सम्मान की मांग करते हैं। भारत में सैनिकों को पर्याप्त सम्मान और सुविधा प्राप्त है।

अनशनः—

(259) स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष काल में जन जागृति के उद्देश्य से सत्याग्रह होता था तथा अनशन का उपयोग अपने लोगों के मार्ग परिवर्तन के लिए किया जाता था। वर्तमान समय में अनशन का मूल अर्थ बदलकर जन जागृति के लिए करने की परम्परा हो गई है।

बहुमत, चुनाव आयोगः—

(260) निर्वाचित इकाई के महत्व के आधार पर ही चुनाव प्रणाली का महत्व घटता व बढ़ता है। निर्वाचित संसद की शक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक निर्वाचन का महत्व भी होगा और उतना ही अधिक अपराधी तत्व निर्वाचित होने का प्रयास करेंगे।

(261) निर्वाचक, निर्वाचित से ऊपर होता है। निर्वाचन प्रणाली निर्वाचित लोग नहीं बना सकते। निर्वाचन प्रणाली बनाने का काम किसी अलग इकाई को करना चाहिए।

(262) वर्तमान स्थिति में भारतीय संसद की चुनाव प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। कोई भी व्यक्ति ईमानदारी और नैतिकता के आधार पर न चुनाव जीत रहा है न जीत सकता है। चुनावों में बल प्रयोग के अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से आपसी सहमति पर कोई प्रतिबंध नही होना चाहिए। लोभ–लालच से वोट लेना–देना कोई अपराध नहीं होना चाहिए। चुनाव उम्मीदवार के खर्च की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए।

(263) किसी भी निवार्चित प्रतिनिधि की शक्ति जनता की अमानत होती है उसका अधिकार नहीं। वर्तमान नेता उसे अपना अधिकार समझते हैं। किसी भी उम्मीदवार को चुनाव लड़ने और उम्मीदवार स्वयं बनने की कोई स्वतंत्रता नहीं होती। किसी प्रस्तावक के प्रस्ताव पर उम्मीदवार अपनी सहमति मात्र देता है। अमानत और अधिकार का अन्तर समझना चाहिए।

(264) चुनाव के समय निर्वाचक के समक्ष निर्वाचित होने वाले की स्थिति स्पष्ट होनी चाहिए। हमारी चुनाव प्रणाली को विकृत करने में दल–बदल विधेयक का भी योगदान है। यह स्पष्ट नहीं है कि निर्वाचन व्यक्ति के लिए है या दल के लिए।

(265) जब तक संविधान में विशेष उल्लेख न हो तब तक किसी भी चुनाव में मतदान अवश्य और गुप्त होना चाहिए चाहे परिवार का हो या संसद का।

(266) किसी निर्वाचित इकाई के बोस प्रतिशत सदस्य यदि किसी प्रस्ताव के विरूद्ध वीटो कर दें तो प्रस्ताव को विवादास्पद मान लेना चाहिए। ऐसा प्रस्ताव मतदान हेतु निर्वाचक इकाई के पास जाना चाहिए जो साधारण बहुमत से पक्ष या विपक्ष में प्रस्ताव पारित करे। यह व्यवस्था स्थानीय इकाई से लेकर संसद तक प्रत्येक निर्वाचित इकाई में लागू करना चाहिए। निर्वाचक इकाई यदि बहुत बड़ी हो तो उसके बीच एक और इकाई बनाई जा सकती है। कोई निर्वाचित सदस्य लगातार तीन बार असफल वीटो का उपयोग करें तो उसका यह अधिकार समाप्त कर देना चाहिए।

(267) भारत की चुनाव प्रणाली पारदर्शी है और चुनाव आयोग लगभग निष्पक्ष। विपक्ष ने इवीएम पर सवाल खड़े करके अपनी मूर्खता प्रमाणित की है।

(268) किसी भी राजनैतिक व्यवस्था में सर्वसम्मति एक आदर्श स्थिति है किन्तु अन्तिम निर्णय के लिए सर्व–सम्मति को आधार नहीं बनाया जा सकता। बहुमत से निर्णय ही व्यावहारिक मार्ग है। यदि किसी चुनाव में जीतने वाला उम्मीदवार चालीस प्रतिशत से भी कम मत प्राप्त करे तो निकटतम उम्मीदवार के साथ रेन्डम प्रणाली से चुनाव करा देना चाहिए। रेन्डम प्रणाली वह है जिसमें किसी एक मतदाता संख्या के मतदाता ही वोट कर सकते हैं।

राष्ट्रपति प्रणाली:–

(269) वर्तमान संसदीय लोकतंत्र की तुलना में राष्ट्रपति प्रणाली अच्छी है। राष्ट्रपति प्रणाली का अर्थ है कि निर्वाचित मुखिया प्रत्येक सदस्य को आदश देने के लिए स्वतंत्र

हो और मुखिया पूरी इकाई के सामूहिक आदेश को मानने के लिए बाध्य हो। इसका अर्थ हुआ कि कोई भी सदस्य मुखिया के आदेश के विरूद्ध संयुक्त इकाई के समक्ष अपील कर सकता है। अन्तिम निर्णय संयुक्त इकाई का होगा। परिवार से केन्द्र सरकार तक यही व्यवस्था लागू होनी चाहिए।

केन्द्र, राज्यः–

(270) तंत्र का दायित्व सिर्फ सुरक्षा और न्याय तक सीमित होता है। तंत्र, सरकार और राज्य एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द है। केंद्र सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकार या नीचे कोई सरकार नहीं होनी चाहिए। केंद्र सरकार के पास सिर्फ पांच विभाग– 1) सेना, 2) पुलिस, 3) वित्त, 4) विदेश और 5) न्याय रहना चाहिए। अन्य सभी दायित्व समाज के लिए छोड़ देना चाहिए।

(271) समाज की व्यवस्था के लिए परिवार, गांव, जिला, प्रदेश और राष्ट्र की अलग–अलग सभाएं हों। इन सभाओं का गठन नीचे की इकाई द्वारा हो। ऊपर की इकाई को अधिकार नीचे की इकाईयां दें और नीचे की इकाईयां वापस भी ले सकें। सरकार सुरक्षा और न्याय तक सीमित रहेगी तो सभाएं अन्य जनकल्याण के कार्य करेंगी। सरकार संविधान से नियंत्रित होगी तो सभाओं का अपना–अपना संविधान होगा। सभाएं अपना–अपना संविधान स्वयं बना सकेंगी।

(272) वर्तमान व्यवस्था में लोकसभा का गठन आम चुनाव से होता है यह ठीक है। राज्यसभा का गठन राष्ट्र सभा द्वारा किया जाना चाहिए। राज्यसभा पांच या छः वर्ष के लिए स्थायी होनी चाहिए। लोकसभा चुनाव प्रतिवर्ष एक सौ नौ या एक सौ सीटों का होना चाहिए।

कार्यपालिकाः–

(273) कार्यपालिका और विधायिका को पूरी तरह स्वतंत्र तथा अलग–अलग होना चाहिए। भारत में विधायिका ने कार्यपालिका को दबा कर रखा है। विधायिका के ही कुछ लोगों को कार्यपालिका प्रमुख बना दिया गया। यही लोग सरकार बन गए तथा प्रमुख कार्यपालिका को सरकारी नौकर घोषित कर दिया गया। यह अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता का केंद्रीयकरण है। राष्ट्रपति को कुछ अधिक अधिकार सम्पन्न होना चाहिए।

(274) निर्वाचित जनप्रतिनिधि क्षेत्र से प्रतिनिधित्व करता है, क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता। वर्तमान भारत में निर्वाचित प्रतिनिधि क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं जिससे कार्यपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप होता है।

सरकारः–

(275) सरकारः– व्यवस्था की सहायता के लिए समाज द्वारा बनाई गई किसी मूर्त इकाई को राज्य या सरकार कहते हैं। व्यवस्था समाज की होती है और कार्यान्वयन

सरकार का। समाज सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व करता है और सरकार समाज का। अतः सम्पूर्ण विश्व का एक ही संविधान होना चाहिए और एक ही सरकार। समाज का कोई स्थिर स्वरूप न होने से राष्ट्रों ने स्वयं को समाज घोषित कर दिया जो कि अस्थायी स्वरूप है।

(276) प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा और उच्छृंखलता पर नियंत्रण का दायित्व संभालने वाली व्यवस्था को सरकार कहते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से तंत्र को सरकार कहते हैं।

(277) लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार का अर्थ होता है न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका का समन्वित व सम्मिलित स्वरूप। वर्तमान समय में सरकार का अर्थ सिर्फ कार्यपालिका तक सीमित कर दिया गया है।

संसद, कार्यपालिकाः—

(278) कार्यपालिका और विधायिका को बिल्कुल अलग अलग होना चाहिए। प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों का चयन सांसदों में से नहीं होना चाहिए। सांसदों की भूमिका कानून बनाने तक सीमित हो। सांसद क्षेत्रीय प्रतिनिधि न होकर संसदीय प्रतिनिधि माना जाना चाहिए। कार्यपालिका के पास न्यूनतम दायित्व तथा अधिकतम शक्ति होनी चाहिए। वर्तमान समय में कार्यपालिका के पास अधिकतम दायित्व किन्तु न्यूनतम शक्ति है। किसी भी अपराध या गैर कानूनी कार्य के होने पर कार्यपालिका को यह अधिकार होना चाहिए कि अपराधी को विधि के अनुसार दण्ड दे सके। आरोपी पीड़ित परिवार अथवा सम्बन्धित सभा कार्यपालिका के निर्णय के विरूद्ध न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इस परिवर्तन से अनेक समस्याएं हल हो सकती हैं।

(279) संसद को निर्दलीय होना चाहिए।

मानवाधिकारः—

(280) भारत में मानवाधिकार के नाम पर काम कर रही अधिकांश संस्थाओं का रिकॉर्ड बहुत खराब है। ये संस्थाएं मानवाधिकार के नाम पर सिर्फ अपराधियों की मदद करती हैं। ऐसी अधिकांश संस्थाएं विदेशों द्वारा पोषित होती हैं और भारत को अव्यवस्थित बनाने में विदेशी संस्थाओं के अप्रत्यक्ष एजेंट के रूप में काम करती हैं। ऐसी संस्थाओं में भी गांधीवादी संस्थाओं का रिकार्ड अधिक खराब है। मानवाधिकार व्यक्ति के व्यक्तिगत होते हैं और न्यायपालिका उनकी सुरक्षा करती है।

लोकपालः—

(281) लोकपाल व्यवस्था भ्रष्टाचार का समाधान नहीं है। लोकपाल भ्रष्टाचार नियंत्रण से ध्यान हटाने का एक उपकरण मात्र है। वर्तमान भ्रष्टाचार वृद्धि की गति को लोकपाल कुछ कम कर सकता है।

विधायिकाः–

(282) समाज के न्यायपूर्ण तथा सुव्यवस्थित संचालन हेतु विधान बनाने वाली अधिकार सम्पन्न इकाई को विधायिका कहते हैं।

(283) विधायिका और कार्यपालिका का कार्य लोकसभा और राज्यसभा जैसी चुनी हुई तथा उच्च पदस्थ शासकीय अधिकारियों के समन्वय से चलता है। चुने हुए लोग नीति और नीयत का तथा अधिकारी कार्य क्षमता का प्रतिनिधित्व करते हैं। चुने हुए लोग ज्ञान और विवेक तथा अधिकारी लोग बुद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं। सांसदों या विधायकों के लिए न्यूनतम योग्यता का मापदण्ड गलत है। यहाँ तक कि पागलपन या विदेशी होना भी अयोग्यता का आधार नहीं होना चाहिए क्योंकि भारत के आम नागरिकों की योग्यता से अधिक और कोई योग्यता का मापदण्ड उचित नहीं। चुने हुए लोगों की योग्यता की एकमात्र कसौटी नागरिकों का विश्वास है। कर्मचारियों की योग्यता के लिए उनकी उम्र, बौद्धिक क्षमता या अन्य मापदण्ड बनाए जा सकते हैं।

(284) वही सरकार अच्छी होती है जो न्यूनतम शासन करे। कम कानून–कठोर कानून। भारत में इस सिद्धान्त के विपरीत कार्य हुआ है।

(285) भारत में विधायिका ने अनावश्यक कानून बना–बनाकर अनेक जटिलताएं उत्पन्न की हैं। विधायिका का कर्तव्य है कि वह कानून बनाने के पूर्व चार परिस्थितियों की समीक्षा अवश्य करः– (क) समाज में हो रहा अन्याय। (ख) महत्व के क्रम में उक्त अन्याय की प्राथमिकता। (ग) प्रशासनिक क्षमता और (घ) कानून के लाभ और दुष्प्रभावों की तुलना। भारत की वर्तमान विधायिका सस्ती प्रशंसा के लोभ में तीन स्थितियों की समीक्षा की अवहेलना करके सिर्फ सामाजिक न्याय की दिशा में चलना शुरू कर देती है।

चुनाव सुधारः–

(290) यह कहना गलत है कि चुनाव सुधारों से बहुत कुछ सुधर सकता है। चुनाव सुधार वर्तमान विकृतियों में पांच या दस प्रतिशत ही प्रभाव डाल सकते हैं। वर्तमान विकृतियां सत्ता के केन्द्रीयकरण का परिणाम है। अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण इसका एकमात्र समाधान है ।

(291) राजनैतिक अस्थिरता से व्यवस्था भी अस्थिर होती है और बार–बार चुनावों का डर भी बना रहता है। राजनैतिक स्थिरता के लिए लोकसभा को इस तरह स्थिर कर

दिया जाए कि उसके चुनाव प्रतिवर्ष 1/5 सीटों के हों। राज्यसभा अस्थिर हो सकती है। राज्यसभा के चुनाव पांच वर्ष के लिए एक बार हो सकते हैं। इस प्रणाली से कई लाभ होंगेः– (1) अनावश्यक राजनैतिक परिवर्तन नहीं होगा। (2) प्रत्येक राजनैतिक दल को प्रतिवर्ष चुनावों का अवसर मिलने से स्थिरता आएगी। (3) चुनावों में विदेशी सक्रियता समाप्त हो जाएगी। (4) चुनावों का खर्च एक बार में न होकर प्रतिवर्ष समान रूप से होगा। (5) राजनीति में निरन्तरता आएगी। (6) संसद को निर्दलीय होना चाहिए दलीय लोकतंत्र ठीक नहीं।

(292) चुनाव में रिजर्व सीट से सामान्य उम्मीदवार तथा सामान्य सीट पर रिजर्व उम्मीदवार की व्यवस्था शुरू करना ठीक रहेगा। इसी तरह आयोग में भी महिला आयोग, आदिवासी या हरिजन आयोग आदि में उसी वर्ग के व्यक्ति के चयन को रोककर भिन्न–भिन्न व्यक्ति को नियुक्त करें।

भाग 3 न्याय

(300) व्यक्ति को उसकी असीम स्वतंत्रता का निर्बाध मिलना न्याय है और उस स्वतंत्रता में आने वाली बाधाओं का दूर करने का उपाय व्यवस्था। न्याय के लिए न्यायपालिका होती है और व्यवस्था के लिए कार्यपालिका। न्यायपालिका व्यक्ति के व्यक्तिगत न्याय की व्यवस्था स्वयं तथा व्यक्ति के न्याय में आने वाली बाधाओं को दूर करने में व्यवस्था की सहायक है। न्यायपालिका न्याय दे नहीं सकती। विधायिका न्याय को परिभाषित करती है, न्यायपालिका न्याय–अन्याय का परीक्षण करके उसे अलग–अलग करती है और कार्यपालिका को निर्देशित करती है। न्याय देना कार्यपालिका का काम है।

(301) न्यायपालिका को यह विशेष अधिकार प्राप्त है कि यदि संविधान का कोई प्रावधान व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के विरुद्ध है तो न्यायपालिका उस प्रावधान को रद्द कर सकती है। न्यायपालिका संविधान के किसी अन्य प्रावधान की समीक्षा नहीं कर सकती। यदि किसी व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता पर कहीं से कोई खतरा हो तो न्यायपालिका उसमें हस्तक्षेप कर सकती है। न्यायपालिका न न्याय को परिभाषित कर सकती है न जनहित को। जनहित याचिकाओं में न्यायपालिका की सक्रियता असंवैधानिक है।

(302) न्यायपालिका का यह संवैधानिक दायित्व है कि वह संविधान के विरुद्ध कानून, कानून के विरुद्ध आदेश और आदेश के विरुद्ध क्रिया को अवैध घोषित कर दे।

(303) भारत की न्याय प्रणाली दुनियाँ में सबसे कमजोर है। यहाँ अपराधों की तुलना में सजाएं एक प्रतिशत मिलती हैं। नब्बे प्रतिशत अपराध तो थाने तक भी नहीं पहुँच पाते। दस प्रतिशत में एक को सजा होती है।

(304) न्यायपालिका अपराध नियंत्रण करने में अपनी भूमिका को भूल गई है। वह पुलिस के द्वारा व्यक्ति के अधिकार हनन में व्यक्ति (विशेषकर पुलिस की दृष्टि में अपराधी) के अधिकारों की प्रहरी की भूमिका तक सीमित हो गयी है ।

(305) अन्य विभागों की अपेक्षा न्यायपालिका में अच्छे विद्वान और ईमानदार लोगों का प्रतिशत बहुत अधिक है परन्तु अपराध नियंत्रण में उसकी असफल भूमिका का कारण न्यायपालिका की संवैधानिक कार्यप्रणाली में है न कि व्यक्ति में। न्यायालयों की कार्य प्रणाली में सीमा से अधिक लचीलापन अपराधियों का कवच है।

(306) न्यायपालिका को सामान्य परिस्थितियों में कभी भी विधायी या कार्यपालिक आदेश नहीं देना चाहिए। वर्तमान समय में भारत की न्यायपालिका न्यायिक कार्य छोड़कर कार्यपालिक या विधायी आदेश ही अधिक देती है। न्यायपालिका सिर्फ व्यक्ति को न्याय दे सकती है। न्यायपालिका किसी नागरिक या व्यक्ति समूह को न्याय नहीं दे सकती। नागरिक के मामले में जस्टिस एकार्डिंग टू लॉ न्यायपालिका की अंतिम सीमा है, जिसे न्यायपालिका को याद रखना चाहिए।

(307) न्याय के साथ तीन बातें जुड़ी होती हैः– (1) अपराधी में भय (2) पीड़ित को संतोष (3) दण्ड का समाज पर प्रभाव। न्यायपालिका को न्याय और व्यवस्था का अन्तर समझना चाहिए।

(308) लोकतंत्र में न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका एक–दूसरे के सहायक भी होते हैं तथा नियंत्रक भी। यदि न्यायपालिका मजबूत होगी तो अव्यवस्था बढ़ेगी और विधायिका मजबूत होगी तो तानाशाही का खतरा बढ़ेगा।

(309) न्यायपालिका किसी अवैध क्रिया को शून्य घोषित कर सकती है किन्तु कोई संशोधन या परिवर्तन नहीं कर सकती। न्यायालयों को न्याय में अवरोध मानकर नए बन रहे कानूनों को न्यायालय की परिधि से बाहर रखने की परम्परा खतरनाक है। इसकी अपेक्षा न्यायालयों की कार्य प्रणाली को ऐसा परिवर्तित करें कि न्यायालय अपराध नियंत्रण में सक्षम भूमिका प्रस्तुत करे।

न्याय और व्यवस्थाः–

(310) अपराधी के निर्दोष छूटने का दायित्व पुलिस पर डालने वाले जज को यदि कुछ दिनों के लिए थानेदार बना दिया जाए तो उसके मुकद्मे पहले वाले थानेदार की अपेक्षा अधिक असफल होंगें। न्यायालय तथा पुलिस न्याय की रक्षा नहीं करते बल्कि कानून की रक्षा करते हैं क्योंकि वह कानून के अनुसार न्याय (**Justice According to Law**) से बंधे हैं। न्याय की रक्षा करना विधायिका का दायित्व है क्योंकि वह (**Law According to Justice**) न्याय के अनुसार कानून से प्रतिबद्ध है। भारत में न्याय और सुरक्षा का सारा दोष पुलिस और न्यायालय पर डालने की परम्परा चल पड़ी है जबकि वास्तविक दोष इनका न होकर विधायिका का है। (1) न्याय और व्यवस्था एक दूसरे के पूरक हैं। (2) न्याय और व्यवस्था के बीच समन्वय, सहयोग और सामंजस्य होना चाहिए। यदि न्याय या आदर्श अधिक होगा और व्यवस्था कम तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी और अन्ततः इसका परिणाम अन्याय होगा। यदि व्यवस्था मजबूत होगी और न्याय कमजोर होगा तो तानाशाही होगी और इसका परिणाम भी अन्याय होगा।

(311) सिद्धान्त और आदर्श न्याय प्राप्ति की इच्छा पैदा करते हैं जिसकी पूर्ति व्यवस्था से होती है। पिछले पचास वर्षो में व्यवस्था की क्षमता का आँकलन किए बिना अति

उच्च और महत्वाकांक्षी आदर्श स्थापित किया गया। इससे व्यवस्था कमजोर होती गई। इस अव्यवस्था को दूर करने हेतु व्यवस्था की वर्तमान क्षमता का ठीक आँकलन करके तद्नुसार आदर्श और सिद्धान्तों को संशोधित करना चाहिए। अपराधों की नई परिभाषा इस हेतु उचित प्रयास हो सकता है।

(312) लोकतंत्र का अर्थ होता है 'लोकनियंत्रित तंत्र'। लोकतंत्र में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका पूरी तरह समकक्ष होती हैं। सन् उन्नीस सौ पचास में तानाशाह नेहरू ने न्यायपालिका के अधिकारों में कमी करके संसदीय लोकतंत्र के नाम पर संसद को सर्वोच्च घोषित कर दिया। सन् उन्नीस सौ तिहत्तर में केशवानन्द भारती प्रकरण के माध्यम से न्यायपालिका ने सरकार के उस निर्णय को बदलकर विधायिका पर अपनी वरीयता प्राप्त कर ली। सन् पचहत्तर में आपातकाल लगाकर इन्दिरा गांधी ने घोषित किया कि जो प्रधानमंत्री कहेगा वही लोकतंत्र होगा। कुछ वर्ष बाद पी.एन भगवती ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से कहा कि न्यायपालिका सर्वोच्च है और न्यायपालिका जो कहे वही लोकतंत्र है। उसके बाद धीरे–धीरे न्यायिक सक्रियता बढ़ते–बढ़ते मनमोहन सिंह के कार्यकाल में न्यायिक तानाशाही में बदल गई। नरेन्द्र मोदी के बाद अब सरकार और न्यायपालिका के बीच बराबरी का टकराव शुरू हुआ है। फिर भी अभी न्यायपालिका ही मजबूत है। भविष्य क्या होगा पता नहीं। कहीं ऐसा न हो जाए कि जो मोदी जी कहें वही लोकतंत्र की स्थिति बन जाए। अभी लोकतंत्र का भविष्य अस्पष्ट है। न्यायालय की कार्य प्रणाली के परिवर्तन में प्रजातंत्र की गलत परिभाषा बाधक है। प्रजातंत्र की सही परिभाषा तो अपराध नियंत्रण में सहायक होती है।

(313) न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका को एक–दूसरे पर नियंत्रक भी होना चाहिए और परस्पर पूरक भी। अपराध नियंत्रण में दोनों की भूमिका सहायक की होनी चाहिए। न्यायपालिका के लोग न्यायालय में कार्यपालिका के लोगों के साथ जैसा दुर्व्यवहार और अपमानित करते रहते हैं वह उचित नहीं है।

(314) न्यायाधीशों को लोकप्रियता की तुलना में न्याय को अधिक महत्व देना चाहिए। वर्तमान समय में न्यायाधीश लोकप्रियता और मीडिया से अधिक प्रभावित हो रहे हैं। जनहित याचिकाओं ने न्यायपालिका को पूरी तरह पटरी से उतार दिया है। जनहित याचिकाओं के कारणः– (1) न्याय में विलम्ब हो रहा है। (2) वकीलों से लेकर जजों तक के गुट बन रहे हैं। (3) न्यायाधीशों में लोकप्रियता की भूख बढ़ रही है। (4) समाज में परजीवियों का एक गुट मजबूत हो रहा है। (5) न्यायपालिका की सर्वोच्चता की भूख बढ़ रही है।

जनहितः–

(315) जनहित क्या है यह सिर्फ लोक अथवा लोक द्वारा एतदर्थ बनाई गई इकाई ही कर सकती है तंत्र नहीं कर सकता। तंत्र का एकमात्र दायित्व होता है सुरक्षा और

न्याय। वर्तमान विश्व में तंत्र ही सुरक्षा और न्याय के साथ–साथ जनहित के कार्य भी अपने दायित्व मानने लगा है।

(316) जनहित के मामले में भारत की स्थिति अधिक खराब है। भारत का तंत्र सुरक्षा और न्याय की तुलना में जनहित के अन्य कार्यों को अधिक प्राथमिकता देता है। लोकतंत्र में विधायिका जनहित को परिभाषित करती है, न्यायपालिका उस परिभाषा के आधार पर परीक्षण करती है और कार्यपालिका क्रियान्वित करती है। वर्तमान में यह क्रम उलट–पलट गया है।

पुलिसः–

(320) पुलिस और न्यायालय पर अधिक बोझ के कारण उनकी कार्य क्षमता घटती है। पुलिस अपराध नियंत्रण में बिल्कुल अक्षम होती जा रही है क्योंकि आवश्यकता के अनुरूप पुलिस बल में वृद्धि ही नहीं की गई। पिछले चालीस वर्षो में जिस अनुपात में आबादी तथा अपराध बढ़े है उस अनुपात में पुलिस बल की संख्या नहीं बढ़ी है। स्वतंत्रता के पूर्व पुलिस बल की कार्य क्षमता का ऑकलन करके ही उन्हें कार्य दिया जाता था। अब तो सारा कार्य बिना आँकलन के ही पुलिस पर थोप दिया जाता है।

(321) पुलिस द्वारा अनेक आतंकवादियों या बड़े अपराधियों को मीसा में बंद करने या गोली मार देने तक की घटनाएं आम बात होती जा रही हैं। जो प्रजातंत्र के विरूद्ध होते हुए भी मजबूरी माना जाने लगा है। पुलिस द्वारा अपराध नियंत्रण के लिए अवैध रूप से कानून अपने हाथ में लेने का समर्थन भी लोग इसीलिए करने लगे हैं कि न्यायालय अपराध नियंत्रण में विफल रहा। न्यायालय द्वारा अपराधी के निर्दोष छूटने की अपेक्षा पुलिस द्वारा अपराधी को फर्जी मुठभेड़ में मार डालना अधिक अच्छा समझा जा रहा है। यदि ऐसी घटनाएं बार–बार हों तो चिन्ता का विषय है। पुलिस की अपेक्षा न्यायपालिका को अधिक आत्ममंथन करना चाहिए, क्योंकि कानून की अपेक्षा न्याय अधिक महत्वपूर्ण होता है। न्याय के हित में कानूनों में संशोधन करना चाहिए।

(322) अपराधियों के मन से कानून का घटता भय तथा समाज के मन से कानून पर से घटता विश्वास प्रजातंत्र के लिए खतरे के संकेत हैं।

(323) पुलिस हमारी रक्षक है। सिर्फ घंटे भर पुलिस को व्यवस्था से हटाकर हम यह अनुभव कर सकते हैं। राजनैतिक हस्तक्षेप तथा समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पुलिस में भी व्याप्त है। कानून की असफलता भी पुलिस को गैरकानूनी अत्याचार हेतु प्रेरित करती है। समाज विरोधी तथा भावना प्रधान लोग पुलिस के विरूद्ध अनवरत प्रचार करके उसका मनोबल गिराते हैं जबकि वास्तविक दोष न्यायपालिका या विधायिका में है।

(324) यदि किसी अपराधी को पुलिस पकड़कर अवैधानिक तरीके से हत्या कर दे या अपराध अनुसार दण्ड दे दे तो पुलिस का कार्य गैरकानूनी मानना चाहिए, अपराध नहीं। अपराध के लिए अपराधी की नीयत भी देखी जाती है। भारत की न्यायपालिका ऐसे गैरकानूनी कार्यो को अपराध मानकर भूल करती है। यदि कोई पुलिस वाला जनहित में कोई गैरकानूनी कार्य करता है तो पुलिस वाले का विरोध नहीं किया जाना चाहिए या तो हम समर्थन करें या चुप रहें।

अपराधः—

(330) दुनिया में किसी अन्य की स्वतंत्रता का उल्लंघन ही एकमात्र अपराध होता है। अन्य कोई कार्य अपराध नहीं होता। अपराध सिर्फ व्यक्ति के विरूद्ध होता है, नागरिक के विरूद्ध नहीं। अपराध दो प्रकार से होता हैः— (1) बल प्रयोग (2) धोखा। अपराधों को पांच भाग में बांट सकते हैः— (1) चोरी, डकैती, लूट आदि, (2) बलात्कार, (3) मिलावट कमतौल, (4) जालसाजी, धोखाधड़ी, (5) हिंसा, बलप्रयोग, आतंकवाद। लोभ लालच से सहमति प्राप्त करना अनैतिक हो सकता है किन्तु अपराध नहीं। ऐसी सहमति मौलिक अधिकारों के लिए भी हो सकती है। मौलिक अधिकारों की सहमति कार्य के क्रियान्वयन के पूर्व तक तोड़ी जा सकती है।

(331) अपराध, गैरकानूनी और अनैतिक अलग अलग होते हैं। किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों का उल्लंघन अपराध, संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन गैरकानूनी और सामाजिक अधिकारों का उल्लंघन अनैतिक होता है। परिभाषाओं के अभाव और अज्ञान के कारण तीनों को एक मान लेने से अपराधों की मात्रा बढ़ जाती है तथा पहचान भी खत्म हो जाती है। हर अपराध गैरकानूनी भी होता है तथा अनैतिक भी किन्तु हर अनैतिक कार्य न गैरकानूनी होता है न अपराध, पर हाँ हर गैर कानूनी कार्य न अपराध होता है न अनैतिक। संवैधानिक अधिकारों का उल्लंघन गैरकानूनी होता है अपराध नहीं। किसी अपराध की तैयारी गैरकानूनी कार्य है। सरकारी सुविधाओं में बाधा गैरकानूनी कार्य है। सरकार गैरकानूनी कार्यो के लिए भी दण्ड दे सकती है। सामाजिक नियमों का उल्लंघन अनैतिक होता है। जुआ, शराब, वैश्यावृत्ति, ब्लैक, गांजा, भांग, छुआछूत, किसी प्रकार का शोषण, आत्महत्या जैसे अनेक असामाजिक कार्य सिर्फ अनैतिक होते हैं। इन सबको न अपराध मानना चाहिए न गैरकानूनी। सरकार इन असामाजिक कार्यो के सम्बन्ध में कानून बनाकर गलत करती है। अपराध नियन्त्रण को सफल बनाने के लिए अपराध और गैरकानूनी कार्य को अलग करना होगा तथा एक सशक्त और अधिक अधिकार सम्पन्न सरकार बनानी होगी।

(332) समाज में दो प्रतिशत के आस—पास अपराधी होते हैं। सरकार ने अनावश्यक कानून बना—बनाकर इस संख्या को निन्यानवें प्रतिशत तक कर दिया है। वर्तमान समय में ऐसा कोई आदमी दिखाई नही देता जो अक्षरशः कानून का पालन करता हो। भारत में गत सत्तर वर्षो में चाहे जिस राजनीतिक संगठन की सरकार रही हो परन्तु समाज

विरोधी तत्वों का मनोबल लगातार बढ़ा है और समाज का मनोबल लगातार कम हुआ है। कानून का उल्लंघन करने वाले हर क्षेत्र में सफल रहे हैं और कानून का पालन करने वाले असफल।

(333) अपराध के तीन कारण बताए जाते हैंः– (1) मजबूरी (2) अशिक्षा (3) अव्यवस्था। इस समय आर्थिक स्थिति भी सुधरी है और शिक्षा में भी विस्तार हुआ है फिर भी अपराध नहीं घटे हैं। क्योंकि अपराधों के बढ़ने का एकमात्र कारण समाज और कानून का घटता भय है। हमारा दुर्भाग्य है कि सरकार आर्थिक स्थिति में अपराधों का समाधान खोज रही है तो सामाजिक संस्थाएं शिक्षा और शराब बंदी में। गुप्त मुकद्मा प्रणाली पुलिस और न्यायालय की असफलताओं का अच्छा समाधान है। इससे कानून शक्तिशाली होगा जो न्याय की सुरक्षा करेगा।

(334) गुण्डों का न कोई धर्म होता है और न कोई जाति। धर्म, राजनीति, व्यवसाय सभी क्षेत्रों में गुण्डों और आतंकवादियों की घुसपैठ हो गई है। कोई गुण्डा यदि दस कत्ल भी कर दे तो उसकी सरलता पूर्वक जमानत हो जाती है तथा वह बेगुनाह सिद्ध होकर छूट जाता है परन्तु किसी शरीफ आदमी द्वारा यदि किसी गुण्डे का वध कर दिया जाए तो वह बेचारा जीवन भर जेल में ही सड़ता रहता है।

(335) भारत की शासन व्यवस्था में समाज विरोधी तत्वों का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप है। वे अपनी सुविधा के अनुसारः– (1) कानून बनवाते हैं। (2) प्राथमिकताएँ तय करते हैं। (3) बुद्धिजीवियों से प्रचार कराते हैं। (4) संचार माध्यमों का उपयोग करते हैं। (5) जन–मानस को अपने अनुसार ढाल लेते हैं। समाज विरोधी तत्व बहुत मायावी होते हैं। भावना प्रधान लोगों के समक्ष दीन भाव प्रकट करके, स्वार्थी तत्वों से समझौता करके तथा कमजोरों को डरा–धमकाकर ये अपनी सहायता में खड़ा कर लेते हैं। गुण्डे इतने चालाक होते हैं कि विवाह, पूजा, खेल, चुनाव या अन्य सामाजिक कार्यों में ही अपनी सक्रिय भूमिका बनाकर प्रशंसा प्राप्त करते रहते हैं। कई लोग समाज के साथ रहते हैं परन्तु स्वार्थवश अथवा अज्ञानवश वे हमेशा समाज विरोधी तत्वों का हित–चिन्तन करते रहते हैं। समाज विरोधी तत्वों पर नियंत्रण हेतु की जाने वाली किसी भी योजना में उन्हें प्रजातंत्र हनन की गंध आती है। किसी संदिग्ध अपराधी के पक्ष में तीन प्रकार के लोग ही खड़े हो सकते हैंः– (1) यदि आपकी व्यक्तिगत जानकारी के अनुसार व्यक्ति निरपराध है। (2) यदि व्यक्ति आपके साथ व्यक्तिगत रूप से जुड़ा हुआ है। (3) यदि आप व्यक्ति के घोषित वकील हैं। यदि कोई अन्य व्यक्ति संदिग्ध अपराधी का पक्ष लेता है तो वह गलत है। पुलिस आमतौर पर फर्जी मुठभेड़ में अपराधियों को मार गिराती है। ऐसी फर्जी मुठभेड़ों पर प्रश्न उठाना हमारा कार्य नहीं होता है।

(336) वर्तमान समय में भारत में अपराध लगातार बढ़ रहे हैं। उसके निम्न कारण हैः– (1) अपराध, गैरकानूनी और अनैतिक कार्य की अलग–अलग परिभाषाओं और पहचान

का अभाव। (2) न्याय की अनुपयुक्त परिभाषा। (3) न्यायपालिका तथा विधायिका द्वारा कार्यपालिका को कमजोर करना। (4) कानूनों का जाल और उनकी अधिकता।

(337) शरीफ लोगों को कभी इकट्ठा होने ही नहीं दिया जाता। जब भी ये लोग इकट्ठा होने लगते हैं तो पेशेवर राजनीतिज्ञ धर्म, जाति, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति, उत्पादक–उपभोक्ता, भाषा और राष्ट्रीयता के नाम पर इन्हें आपस में ही विभाजित कर देते हैं। पहले समाज विरोधी तत्वों की अनेक राजनीतिक नेताओं से सांठ–गांठ रहती थी परन्तु अब ऐसे तत्व स्वयं ही राजनीति में आने का प्रयास कर रहे हैं।

(338) भारत की जनता शांति व्यवस्था की मांग करती है तो उसे शांति व्यवस्था के स्थान पर कानून मिलते हैं जिनका कोई उपयोग नहीं। अपराधियों के मन से कानून का भय तथा समाज का कानून पर से विश्वास लगातार घट रहा है। परिणामस्वरूप अपराधी कानून का खुला उल्लंघन करता है और आम आदमी कानून अपने हाथ में लेकर न्याय प्राप्ति पर विश्वास करने लगा है। भारत के निन्यानवें प्रतिशत लोग अपराध भाव से ग्रसित हैं। कानूनों की अनावश्यक अधिकता तथा कानून के उल्लंघन को ही अपराध मानने से यह स्थिति विकट बन गई है। पुलिस और न्यायालय की क्षमता का आँकलन करके ही कानून बनाना चाहिए। यदि कानून अधिक होंगे और व्यवस्था कम तो अव्यवस्था बढ़ती जाएगी। वर्तमान समय में भारत की पुलिस और न्यायालय कुल आबादी क डेढ़ प्रतिशत भाग पर ही अपराध नियंत्रण की क्षमता रखते हैं। दूसरी ओर कानूनों की अधिकता निन्यानवें प्रतिशत तक लोगों को अपराधी घोषित करती है। पुलिस और न्यायालय की क्षमता बढ़ाकर तथा कानूनों की संख्या घटाकर ही यह असंतुलन दूर करना संभव है। कानूनो की संख्या तत्काल कम करके उन्हें निन्यानवें प्रतिशत के स्थान पर डेढ़ प्रतिशत तक कर देना चाहिए। जब पुलिस और न्यायालय की क्षमता बढ़ेगी तब और कानून बनाए जा सकते हैं। अट्ठानवें प्रतिशत समस्याएं शासकीय हस्तक्षेप अथवा अनावश्यक कानूनों का **(By Product)** उत्पादन है। कार्य प्रणाली परिवर्तन तथा प्राथमिकताओं के पुनः निर्धारण से ये समस्याएं स्वयं दूर हो सकती हैं।

(339) यदि कोई शासन अपराध नियंत्रण में अक्षम है तो समाज को उसेः– (1) उचित मार्गदर्शन तथा उसकी मदद करनी चाहिए (2) उसे बदलकर नया शासन बना देना चाहिए। (3) आपातकाल घोषित करके सारी शक्ति स्वयं में तब तक केन्द्रित कर लेनी चाहिए जब तक कोई नई व्यवस्था की परिस्थितियां पैदा न हो जाए।

दण्डः–

(340) दण्ड की मात्रा किसी सिद्धान्त के आधार पर तय न होकर उस समय के वातावरण के आधार पर तय होती है। यदि दण्ड आवश्यकता से कम होगा तो अपराधों में वृद्धि होगी और दण्ड आवश्यकता से अधिक होगा तो तानाशाही का खतरा बढ़ेगा।

(341) भारत में अपराधों की तुलना में दण्ड का प्रतिशत एक से भी कम है। भारत सरकार का कुल बजट पुलिस और न्यायालय को मिलाकर एक प्रतिशत से भी कम है तथा अन्य विकास कार्यों पर अस्सी प्रतिशत से अधिक। पुलिस और न्यायालय की नब्बे प्रतिशत शक्ति अन्य कार्यों पर खर्च कराई जाती है तो सिर्फ दस प्रतिशत अपराध नियंत्रण पर। इस तरह भारत के कुल बजट का दस पैसा अपराध नियंत्रण तथा निन्यानवें रूपया नब्बे पैसा अन्य स्थानों पर खर्च होता है।

(342) भारत में अवैध बन्दूक–पिस्तौल की तुलना में अवैध गांजे को अधिक गम्भीर अपराध माना जाता है। भारत में पेशेवर हत्यारों की तुलना में साधारण बलात्कार हत्या को अधिक गम्भीर अपराध माना जाता है। भारत में आतंकवाद की तुलना में शराब बन्दी को अधिक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है।

(343) पश्चिम में न्याय का सिद्धान्त है कि भले ही सौ अपराधी छूट जाए पर एक भी निरपराध दण्डित न हो क्योंकि पश्चिम में अपराध कम है। भारत में अपराध बहुत होने से पश्चिम का न्याय सिद्धान्त गलत है। उचित होगा कि न्याय के सिद्धान्त में यह संशोधन हो कि न कोई अपराधी छूटे न निरपराध दण्डित हो।

(344) भारत में बलात्कार, आतंकवाद, डकैती, हत्या आदि के लिए दोष सिद्धि का दायित्व पुलिस पर है तो दहेज, छुआछूत, आदिवासी, हरिजन कानून उल्लंघन में निर्दोष सिद्ध होने का दायित्व आरोपी पर है। जबकि यह उल्टा होना चाहिए।

(345) भारत में यदि कोई डकैत किसी की हत्या कर दे तो सिर्फ पुलिस की चिन्ता तक सीमित है किन्तु कोई भूख से मर जाए तो सुप्रीम कोर्ट से लेकर केन्द्र सरकार तक सक्रिय हो जाती है। आपराधिक हत्या की तुलना में भूख से मरने वाले के परिवार को अधिक मुआवजा मिलता है।

(346) भारत में गांव–गांव तक अपराधियों से शरीफ लोग डरते हैं। वस्तुतः ऐसी परिस्थितियों में कई बार पुलिस को सूचना ही नही दी जाती अथवा अनेक बार मुकद्‌दमा दर्ज होने पर भी गवाही के अभाव में अपराधी छूट जाते हैं।

(347) भारत मं साधारण व्यक्ति भी पाकिस्तान या अमेरिका के राष्ट्रपति की आलोचना करने या पुतला जलाने में भले ही सक्रिय दिखे किन्तु स्थानीय गुण्डे या अपराधी के विरूद्ध बोलने से डरता है।

(348) भारत आज भी दण्ड संहिता और न्याय प्रक्रिया में अंग्रेजी काल के कानूनों की नकल करता है। यहाँ भी पुलिस द्वारा प्रमाणित अपराधी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक उस पर न्यायालय द्वारा अपराध सिद्ध न हो। न्यायालय, पुलिस को

एक पक्षकार मानता है, न्याय सहायक नहीं। यह गलत है। न्यायालय को पुलिस द्वारा पमाणित आरोपी को संदिग्ध अपराधी और पुलिस को न्याय सहायक मानना चाहिए। मुकद्दमा शुरू होते ही आरोपी का विस्तृत परीक्षण होना चाहिए।

(349) भारत में किसी निरपराध का दण्डित होना अन्याय माना जाता है जबकि किसी अपराधी का निर्दोष छूटना अन्याय नहीं मानते। यह सरासर गलत है।

अपराध और अपराध नियंत्रणः–

(350) भारत में न्याय प्रक्रिया महंगी, विलम्बित और अविश्वसनीय है। पुलिस और न्यायालय पर अतिरिक्त कार्य–भार है क्योंकि दोनो ही अपना काम कम और अनावश्यक, काम अधिक करते हैं। इस समस्या के समाधान के लिएः– (1) अनावश्यक कानून हटा दें। (2) स्थानीय पंचायत प्रणाली को महत्व दें। (3) न्याय के समय परिवार और ग्राम सभा को भी जूरी मानने की प्रणाली बने। आपसी समझौतों को महत्व दें। (4) गुप्त मुकदमा प्रणाली लागू करें जिसके अनुसार किसी जिले के कलेक्टर, एसपी और जिला न्यायाधीश आवश्यक समझें कि अपराधियों का भय बढ़ गया है तो आपातकाल लागू कर सकते हैं। ऐसे आपातकाल में गुप्तचर पुलिस न्यायालय में गुप्त मुकदमा प्रस्तुत कर सकती है और गुप्तचर न्यायालय गुप्त ट्रायल द्वारा दंडित कर सकता है। ऐसे घोषित दण्ड की अपील भी गुप्तचर न्यायालय मं ही हो सकती है।

(351) अपराध नियंत्रण के लिए न्यूनतम शक्ति प्रयोग नहीं, संतुलित शक्ति का प्रयोग होना चाहिए। यदि शक्ति प्रयोग आवश्यकता से कम होगा तो अपराधियों की सहन शक्ति उसी तरह बढ़ जाती है जिस तरह कम दवा के प्रयोग का कीटाणुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। वर्तमान समय में शक्ति प्रयोग असंतुलित तथा आवश्यकता से कम है। परिणामस्वरूप अपराध नियंत्रण में उनका प्रभाव लगातार घटता जा रहा है।

(352) अपराधों में सजा का आँकलन उसके समाज पर पड़ने वाले प्रभाव के आधार पर होना चाहिए न कि किसी अन्य सिद्धान्त के आधार पर। क्योंकि सजा का उद्दश्य पीड़ित को संतोष और अपराधी को दण्ड के साथ–साथ समाज में भय उत्पन्न करना भी होता है। यदि समाज में 'भय' दण्ड से कम हो जाए तो सजा की मात्रा और अमानवीयता को उस सीमा तक बढ़ाना चाहिए जो समाज में अपराध के प्रति भय उत्पन्न कर सके। वर्तमान परिस्थितियों में अल्पकाल के लिए सार्वजनिक चौक पर फाँसी भी प्रारंभ की जा सकती है।

(353) फाँसी स्वयं में एक अमानवीय कार्य है। फाँसी को इस तरह संशोधित, करना चाहिए कि वह सजा प्राप्त व्यक्ति को मृत्यु का एक विकल्प भी दे सके और समाज पर लम्ब समय तक भय उत्पादक प्रभाव भी छोड़ सके। फाँसी की सजा प्राप्त अपराधी

यदि अपनी दोनों आंखे जीवित अवस्था में दान देकर अन्धत्व स्थिति में तथा जमानत पर कुछ समय के लिए जीवित रहने की इच्छा व्यक्त करे तो हमें उसे आवश्यक शर्तो के साथ जमानत पर छोड़ देने का न्यायालयों को अधिकार देना चाहिए।

(354) जेल अपराधी को दण्ड के भय से सुधरने का अवसर देने का माध्यम है। जेलों को बहुत अधिक सुविधाजनक बनाना ठीक नहीं। जेलों को सुधार गृह बनाना गलत हैं। जेलों में साधु–सन्तों का प्रवचन करना भी बेकार की कसरत है। जो साधु–संत बाहर के लोगों को नहीं समझा पा रहे हैं वे जेल में अपराधियों को क्या समझा लेगें? वर्तमान समय में जेल से सुधरने वालों की संख्या कम है और बिगड़ने वालों की अधिक।

भयः—

(355) भय, किसी भी व्यक्ति से अपने अनुसार आचरण कराने का सबसे अधिक सुविधाजनक और सफल किन्तु अन्यायपूर्ण तथा अमानवीय मार्ग है। अपराध नियंत्रण के लिए भय तीन प्रकार से प्रचलित हैः— (1) ईश्वर का, (2) समाज का, (3) सरकार का। ईश्वर का भय विश्वास घटने से प्रभावहीन हो गया है। समाज का स्वरूप अस्तित्वहीन हो गया है। सरकार ही भय पैदा करने का एकमात्र आधार है। शक्ति का सन्तुलित उपयोग सरकार द्वारा भय पैदा करने का एकमात्र आधार है।

(356) भय का उपयोग बिल्कुल अंतिम स्थिति में ही करना चाहिए, सामान्यतया नहीं। सामान्य स्थिति में भय का प्रयोग जितना घातक होता है, विशेष स्थिति में भय का प्रयोग न करना या कम करना उससे अधिक घातक होता है। वर्तमान समय में नक्सलवादी, आतंकवादी अथवा अपराधी तत्व समाज में अपना भय पैदा करने में सफल हैं जबकि सरकार उनके अंदर भय पैदा करने में सफल नहीं है क्योंकि सरकार भय (शक्ति) का प्रयोग आवश्यकता से कम कर रही है।

शोषणः—

(357) किसी भी प्रकार का शोषण कोई अपराध नहीं होता चाहे वह शोषण आर्थिक, सामाजिक या दैहिक कैसा भी हो? शोषण अनैतिक, असामाजिक कार्य माना जा सकता है। शोषण को अपराध कहना गलत है। समाज में प्रारम्भ से अन्त तक स्वतंत्र प्रतिस्पर्धाएं होती हैं। किसी भी प्रतिस्पर्धा को शोषण कहा जाने लगा है जो गलत है। शोषण रोकना सरकार का काम नहीं है।

(358) दुनिया में सर्वाधिक शोषण, अत्याचार और हत्याएँ धर्म के नाम पर होती हैं। दूसरा क्रम राजनीति का है और तीसरा जातिवाद का। व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण अपराधों का क्रम तो चौथा होता है अतः अधिकांश सामाजिक संगठन धर्म, राजनीति, और जाति को हथियार बनाते हैं।

सुरक्षाः–

(360) राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा का दायित्व सेना पर तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमा रेखा की सुरक्षा का दायित्व पुलिस और न्यायालय पर है। राष्ट्र की सीमाएँ सुरक्षित हैं और व्यक्ति की स्वतंत्रता असुरक्षित। हमारे राजनेता तथा सामाजिक संस्थाओं के लोग भी चन्दा, हड़ताल, कानून आदि के द्वारा व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आक्रमण करते रहते हैं, दूसरी ओर राष्ट्र की सीमाओं की सुरक्षा का राग अलापते हैं जबकि हमारी सेना ने ऐसा कोई आह्वान नहीं किया है।

(361) भारत के राष्ट्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय बजट का कुल एक प्रतिशत ही आन्तरिक सुरक्षा पर खर्च होता है, शेष निन्यानवें प्रतिशत अन्य विकास कार्यो पर खर्च होता है। भारत में डकैती और हत्या में मुआवजे का प्रावधान नहीं है, जबकि एक्सीडेंट या आग लगने में है। सुरक्षा शासन का दायित्व नहीं माना जाता।

(362), भारतीय जनता पार्टी की पहचान दो आधारों पर केन्द्रित रही हैः– (1) शराफत, (2) हिन्दुत्व या राष्ट्रवाद। अब भारतीय जनता पार्टी द्वारा भी कट्टर हिन्दुत्व या राष्ट्रवाद की ओर झुक जाने से शराफत पूरी तरह अनाथ होती जा रही है।

(363) किसी भी राजनैतिक दल के चुनाव घोषणा पत्र में कानून का पालन करने वालों का मनोबल ऊँचा करने का कोई उल्लेख नहीं है। किसी भी राजनैतिक दल के पास अपराध नियंत्रण की भी कोई प्रभावकारी योजना नहीं है। पिछले चालीस वर्षो में जनकल्याणकारी कार्यो में तो हम आगे बढ़े हैं परन्तु अपराध नियंत्रण में हम पीछे हुए हैं। फिर भी कोई राजनेता या सामाजिक कार्यकर्ता अपराध नियंत्रण की चर्चा करने से भी कतराता है।

उग्रवादः–

(370) उग्रवाद तथा आतंकवाद बिल्कुल अलग–अलग होते हैं। आतंकवाद के तीन आवश्यक लक्षण होते हैः– (1) कोई योजनाबद्ध संगठित आपराधिक क्रिया हो। (2) स्थापित व्यवस्था को चुनौती हो। (3) क्रिया के परिणाम से बड़े क्षेत्र में भय व्याप्त हो। यदि ये तीनों बातें एक साथ न हों तो उसे उग्रवाद कह सकते हैं आतंकवाद नहीं। उग्रवाद आमतौर पर विचारों तक सीमित होता है, क्रिया में नहीं।

(371) उग्रवाद ही आतंकवाद की जड़ है। उग्रवादी संगठन में लम्बे समय बाद आतंकवादी संगठन बनना निश्चित होता है। इस्लाम, साम्यवाद और सावरकरवादी विचारधारा उग्रवादी है किन्तु कालान्तर में इन्हीं में से कुछ लोग निकलकर आतंक की दिशा में बढ़ गए। नक्सलवाद, इस्लामिक आतंकवाद अथवा अतिवादी हिन्दू समूह ऐसे ही लोगों का संगठन है।

(372) उग्रवादी तत्व स्वयं कभी हिंसा नहीं करते किन्तु दूसरों को हिंसा के लिए प्रोत्साहित तथा उत्तेजित करते हैं।

शस्त्रः–

(373) किसी भी व्यक्ति को व्यक्तिगत आधार पर शस्त्र रखने की अनुमति गलत है। पश्चिम के देश हथियारों का व्यापार करने के लिए ऐसी छूट देते हैं और भारत उसकी नकल करता है।

भ्रष्टाचारः–

(380) किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्ता के बीच दूरी जितनी अधिक होती है उतनी ही अधिक परिणाम की गुणवत्ता घटती जाती है। यह दूरी ही भ्रष्टाचार के घटने व बढ़ने का आधार बनती है। भ्रष्टाचार अपराध नहीं होता, गैर कानूनी या अनैतिक हो सकता है।

(381) किसी भो व्यवस्था के पास अपराध रोकने की शक्ति सिर्फ दो प्रतिशत होती है। यदि अपराध दो प्रतिशत से अधिक बढ़े तो अपराध रूक नहीं सकते। भारत में भ्रष्टाचार पच्चानवें प्रतिशत से भी ज्यादा है। अतः भ्रष्टाचार रोकने के लिए पहले कानूनों की मात्रा दो प्रतिशत से कम करनी होगी। राज्य भ्रष्टाचार रोकना ही नहीं चाहता क्योंकि वह भ्रष्टाचार का प्रतिशत जानते हुए भी उसी भ्रष्ट व्यवस्था को नए–नए अधिकार देता रहता है।

(382) किसी मामले में घूस लेना गैरकानूनी और अनैतिक है और देना मजबूरी। घूस देना अपराध नही होता। कुछ नासमझ लोग घूस देने को भी अपऱाध मानते हैं जो गलत है।

(383) भारत में भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक फैल चुका है। राजनेताओं में शत–प्रतिशत, व्यापारियों में अंट्ठानबे प्रतिशत, न्यायपालिका में पंचानबे प्रतिशत, शिक्षा में नब्बे प्रतिशत के करीब हैं। पिछले समय में जनता एक सौ रूपये टैक्स देती थी तो शासन को पंद्रह रूपये पहुँचता था। अब भी स्थिति में मामूली बदलाव ही हुआ है।

(384) कानून और भ्रष्टाचार एक–दूसरे के पूरक हैं। कानून भ्रष्टाचार को बढ़ाते हैं और भ्रष्टाचार कानूनों में वृद्धि करता है। व्यक्ति के अधिकार (**Right**) जब किसी अन्य को हस्तांतरित होते हैं तो वे शक्ति (**Power**) बन जाते हैं। यही कानून बनता है। यहीं से भ्रष्टाचार के अवसरों का जन्म होता है। व्यवस्था में **Power** (कानूनों) की मात्रा ही भ्रष्टाचार की मात्रा होती है।

(385) भारत की वर्तमान अर्थनीति भ्रष्टाचार को कम से कम करती जाएगी। अधिकतम निजीकरण हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए। आदर्श स्थिति में सत्ता के विकेन्द्रीयकरण का प्रयास ही भ्रष्टाचार कम करने में सहायक होगा। अपराध नियंत्रण के दायित्व के अतिरिक्त अन्य कार्यो की समीक्षा करके परिस्थिति के अनुसार शासन ऐसे कर्तव्यों से मुक्त हो जाए। शिक्षा, चिकित्सा, आवागमन, वस्तु क्रय–विक्रय आदि अधिकांश कार्य शासकीय हस्तक्षेप के बिना स्थानीय स्तर पर होना भी सम्भव है। इससे नब्बे प्रतिशत तक अनावश्यक विभागों की समाप्ति सम्भव है। इसी हिसाब से भ्रष्टाचार भी समाप्त होता जायेगा।

(386) पारदर्शिता, विकन्द्रीयकरण तथा कानूनों का कम करना भ्रष्टाचार दूर करने का सरल उपाय है। राष्ट्रीयकरण भी कम से कम कर देना चाहिए।

(387) दुनिया के अनेक देश भारत के नागरिकों को स्वभाव से ही भ्रष्ट मानते हैं। उनका मानना है कि भारत के आम लोग टैक्स चोरी करने के कारण भ्रष्ट हैं। मैं यह आरोप गलत मानता हूँ। भारत के लोग कुल मिलाकर जितनी टैक्स चोरी करते हैं उससे कई गुना अधिक मंदिरों, धर्मगुरूओं या अन्य धार्मिक सामाजिक कार्यो में स्वेच्छा से दान कर देते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत के लोग अब तक भी अपनी सरकार को इतना विश्वास योग्य नहीं मानते कि उसके साथ आत्मीय भाव पैदा हो।

मिलावटः–

(388) किसी भी प्रकार की मिलावट अपराध होता है। मिश्रण आर मिलावट बिल्कुल अलग–अलग हैं। भारत के कानून बनाने वाले भी दोनो का अन्तर नहीं समझने के कारण भूल कर देते हैं।

बलात्कारः–

(390) स्त्री–पुरूष के बीच शारीरिक सम्बन्ध और आकर्षण प्राकृतिक भूख है। इसमें द्विपक्षीय संतुष्टि निहित है, एकपक्षीय नहीं। इस द्विपक्षीय क्रिया में ही सृजन का भी संदेश निहित है। यदि दूरी घटेगी तो खतरा बढ़ेगा और बढ़ेगी तो सृजन रूकेगा। यह दूरी संतुलित होनी चाहिए। इस संतुलन का नाम विवाह और परिवार है। आज तक हमारी सरकार तय नहीं कर सकी कि वह दूरी घटाने की पक्षघर है या बढ़ाने की। महिला समानता, महिला सशक्तिकरण सह शिक्षा के नाम पर दूरी घटाने की बात होती है तो बलात्कार के अतिरंजित कानून, वैश्यालय नियंत्रण, महिला सुरक्षा, बार बाला कानून आदि दूरी बढ़ाने के। राज्य दोनों विपरीत दिशाओं में एक साथ सक्रिय है।

(391) स्त्री–पुरूष के बीच बिना सहमति के बनाया जाने वाला सम्बन्ध बलात्कार के रूप में अपराध होता है। बलात्कार के अतिरिक्त अन्य सहमत सम्बन्ध अनैतिक हो सकते है किन्तु बलात्कार नहीं। स्वेच्छा से बनने वाले ऐसे सम्बन्ध में बाधा अपराध है। ऐसे सहमत सम्बन्ध को सामाजिक सहमति से नियंत्रित किया जा सकता है किन्तु कानून का हस्तक्षेप गलत है जैसा वर्तमान में होता है। बलात्कार सम्बन्धी वर्तमान कानून पूरी तरह अमानवीय और असामाजिक हैं। इनमें आमूल– चूल बदलाव उचित है।

(392) भारत में बलात्कार तेजी से बढ़ रहे हैं जिसके लिए सरकारी कानून जिम्मेदार हैं। सरकार विवाह की उम्र बढ़ाती है और वैश्यावृत्ति रोकती है इससे बलात्कार बढ़ते हैं।

(393) भारत में बलात्कार के सरकारी आंकड़े पूरी तरह गलत हैं। इनमें सिर्फ पांच–सात प्रतिशत मामले ही बलात्कार के होते हैं। अन्य सब मामले बलात्कार न होकर सिर्फ व्यभिचार होते हैं जो गैरकानूनी होते हैं। ऐसे मामले अनावश्यक कानून के कारण होते हैं।

(394) भारत में बलात्कार के साथ हत्याएं बहुत तेजी से बढ़ी हैं क्योंकि सरकार ने बलात्कार में दण्ड को गलत तरीके से बहुत बढ़ा दिया।

(395) यदि सामान्य बलात्कार और सामान्य डकैती की तुलना करें तो डकैती अधिक गम्भीर अपराध है।

(396) बलात्कार शब्द का महिला–पुरूष के बीच वर्ग संघर्ष के लिए जिस तरह दुरूपयोग हो रहा है। वह महिला–पुरूष के आपसी सम्बन्धों को व्यापक नुकसान करेगा। पश्चिम से आई यह बीमारी सामाजिक व्यवस्था को व्यापक नुकसान करेगी। सरकार को चाहिए कि बलात्कार सम्बन्धी सभी नए कानून समाप्त करके पुराने कानून तक सीमित कर दे।

(397) कोई व्यभिचार, चाहे आश्रमों में भी हो, अपराध नहीं होता, अनैतिक या असामाजिक हो सकता है। व्यभिचार के लिए किसी का सामाजिक बहिष्कार हो सकता है किन्तु दण्ड नहीं दे सकते। नासमझ नेताओं ने तो बार बालाओं या वैश्यावृत्ति तक पर रोक लगा दी है।

भाग 4 लोकतान्त्रिक

सत्ता का विकेन्द्रीयकरणः–

(400) पंचायती राज व्यवस्था सत्ता का विकेन्द्रीयकरण है, अधिकारों का नहीं। यह समस्याओं के समाधान की ओर एक कदम है परन्तु समाधान नहीं, क्योंकि वर्तमान पंचायतों को सिर्फ प्रशासनिक अधिकार ही दिए गए हैं, कोई विधायी अधिकार नहीं।

(401) अधिकारों का अपनी मूल इकाई तक एकाएक नीचे आना अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण है। अधिकारों का धीरे–धीरे नीचे आना सत्ता का विकेन्द्रीयकरण है। अकेन्द्रित व्यवस्था में नीचे वाली इकाई ऊपर की इकाई का चयन भी करती है और अधिकार भी देती है। विकेन्द्रित व्यवस्था में नीचे वाली इकाई चयन करती है और ऊपर वाली इकाई नीचे वाली इकाई को अधिकार देती है। केन्द्रित व्यवस्था में नीचे की इकाई ऊपर की इकाई का चयन करती है किन्तु ऊपर की इकाई नीचे की इकाई को अधिकार नहीं देती। आदर्श स्थिति में व्यवस्था अकेन्द्रित होती है। अकेन्द्रित व्यवस्था का स्पष्ट अर्थ है कि संविधान बनाने या संशोधित करने में प्रत्येक व्यक्ति की असीम भूमिका हो। वर्तमान विश्व के कुछ देशों में आंशिक रूप से ऐसी व्यवस्था है भी किन्तु भारत जैसे अनेक देशों में संविधान संशोधन में समाज की कोई भूमिका न होकर तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त हैं। इस तरह कुछ देशों में आंशिक अकेन्द्रित, कुछ देशों में विकेन्द्रित तथा भारत सहित कुछ देशों में आंशिक विकेन्द्रित व्यवस्था है।

(402) अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण अधिकांश समस्याओं का एक मात्र और सुविधाजनक समाधान है। गांधी जी, विनोबा जी तथा जय प्रकाश जी अकेन्द्रित व्यवस्था के पूरी तरह पक्षधर रहे। गांधी जी स्वराज्य के लिए निर्माण और संघर्ष में समन्वय के पक्षधर थे। विनोबा जी संघर्ष की अपेक्षा निर्माण पर ज्यादा जोर देते थे। जयप्रकाश जी निमाण की अपेक्षा संघर्ष के पक्षधर थे किन्तु उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक काम करने का अवसर नहीं मिला।

(403) किसी गुण्डे द्वारा अपराध में फंस जाने की अवस्था में हमारे नेताओं की आत्मा दया से भर जाती है, उसे छुड़ाने में थाने से कोर्ट तक मानवीय आधार पर बहुत मदद करते हैं, परन्तु किसी शरीफ की मदद करने में कानून उनके आड़े आ जाता है। अधिकारों का केन्द्रीयकरण ही राजनेताओं को गुण्डों, भविष्यवक्ताओं, धनपतियों या धूर्तो के समक्ष आत्म समर्पण करा देता है।

(404) समाज में दो वर्ग हैंः–(1) जो लोग आम नागरिकों को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ मानकर स्वयं को उनकी व्यवस्था का उत्तरदायी मानते हैं उन्हें शासक या गुरू कहते हैं। (2) जो स्वयं को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ मानकर पहले वर्ग को अपनी व्यवस्था करने का उत्तरदायी मानते हैं उन्हें शासित कहते हैं। प्रत्यक्ष रूप से गुरू और

शासक का रूप भिन्न हैं पर वास्तव में दोनों की कार्यप्रणाली एक ही है कि आम नागरिकों में न तो कभी निर्णय करने की क्षमता बढ़े न हीं ऐसी इच्छाशक्ति।

(405) व्यक्ति के आचरण की मर्यादाएँ शासन भी तय करता है और धार्मिक गुरू या संस्थाएँ भी। किन्तु सत्ता या गुरूओं की मर्यादा, आचरण या अधिकारों की सीमाएं वे स्वयं ही तय कर सकते हैं, यह विडम्बना है। धार्मिक गुरू राजनैतिक सत्ता प्रणाली से कम हानिकर है क्योंकि धार्मिक गुरू स्वेच्छा से स्थापित होता है और कभी भी तोड़ा जा सकता है, जबकि राजनैतिक सत्ता को स्वीकार करना हमारी संवैधानिक मजबूरी है।

(406) स्वतंत्रता संघर्ष के बाद सुभाषचंद्र बोस अस्थायी तानाशाही के, सरदार पटेल सीमित मताधिकार के, नेहरू जी बालिग मताधिकार के और गांधी जी स्वशासन के पक्षधर थे। स्वतंत्रता के बाद गांधी जी कम से कम नियंत्रण चाहते थे और नेहरू जी अधिक नियंत्रण के पक्ष में थे। गांधी जी स्वराज्य के पक्षधर थे और नेहरू जी सुराज्य के। गांधी हत्या के बाद नेहरू जी को अपनी नियंत्रण प्रणाली लागू करने में सुविधा हो गई। भारत की जनता को आश्वस्त किया गया कि उसको व्यक्तिगत स्वतंत्रता के स्थान पर सुराज्य पाप्त होगा। भारत की जनता ने अपनी स्वतंत्रता पर मनमाने अंकुश स्वीकार किए किन्तु व्यवस्था नहीं सुधरी। इस तरह हमारा स्वराज्य तो चला गया परन्तु सुराज्य नहीं मिला। अब भी भारत के राजनैतिक दल सुराज्य का आश्वासन देते हैं जो खोखला है। अतः ''हमें सुराज्य नहीं स्वराज्य चाहिए'' यह हमारा घोष वाक्य और घोषित लक्ष्य होना चाहिए।

स्वराज्यः—

(407) स्वराज्य का अर्थ है प्रत्येक इकाई को अपना आंतरिक संविधान बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान बनाने में सहभागिता। ग्राम स्वराज्य और लोक स्वराज्य शब्दों के अभिप्राय लगभग समान होते हैं फिर भी लोक स्वराज्य शब्द अधिक व्यापक, स्पष्ट और सुविधाजनक है। दोनों प्रयत्नों को एक—दूसरे के साथ समन्वय करना चाहिए। भारत विदेशी गुलामी से मुक्त हुआ और स्वदेशी गुलामी में जकड़ गया। भारत में स्वराज्य आना शेष है।

(408) आदर्श ग्राम और स्वराज्य ग्राम पृथक परिणाम वाले प्रयास हैं। स्वराज्य ग्राम, आदर्श ग्राम की ओर बढ़ने का एक आवश्यक कदम है। किन्तु बिना ग्राम स्वराज्य के आदर्श ग्राम अर्थात् ग्राम स्वावलम्बन, स्वरोजगार, कुरीति निवारण आदि के पयास न सिर्फ मृगतृष्णा हैं बल्कि ग्राम स्वराज्य में बाधक भी हैं। शासन मुक्ति हमारा प्रथम प्रयास होना चाहिए। गांधीजी शासन मुक्ति के प्रबल पक्षधर थे किन्तु गांधी जी के बाद शासन मुक्ति के प्रयत्नों को किनारे करके अभाव मुक्ति और शोषण मुक्ति का असम्भव प्रयास किया गया।

(409) नेता बेलगाम हैं, संत गुरू नाकाम हैं, हम सब आज गुलाम हैं, अपराधी खुलेआम हैं, अब स्वराज्य का नारा दो, हम पर राज्य हमारा हो।

ग्राम सभाः—

(410) वर्तमान में प्रत्येक बालिग को मिलाकर ग्राम सभा बनी हुई है जो अव्यावहारिक है। ग्राम सभा में प्रत्येक परिवार का एक सदस्य होना व्यावहारिक है और किसी मतदान की स्थिति में उसकी शक्ति परिवार की सदस्य संख्या के आधार पर हो।

(411) वर्तमान भारत में संविधान के अनुसार ग्राम सभा व्यवस्था की पहली इकाई है और ग्राम पंचायत दूसरी। किंतु पचीस वर्ष के बाद भी ग्राम सभाओ को एक भी विधायी अधिकार नहीं दिए गए। कुछ कार्यपालिक अधिकार दिए गए जिनमें ग्राम पंचायत का भी हस्तक्षेप डाल दिया गया। भारत में ग्राम सभाएं सिर्फ मुखौटा मात्र हैं। कांग्रेस पार्टी की तुलना में भाजपा शासन में ग्राम सभाएं अधिक कमजोर हुई हैं।

(412) लोक स्वराज्य प्रणाली का प्रारम्भ सप्रभुता संपन्न परिवार सभा के द्वारा होता है और उसके ऊपर ग्रामसभा होनी चाहिए जिसकी दूर—दूर तक कोई संभावना दिखाई नही देती।

पंचायती राजः—

(413) पंचायती राज सत्ता का विकेन्द्रीयकरण है और ग्राम स्वराज्य अकेन्द्रीयकरण।

(414) गांधी जी तथा जयप्रकाश जी ग्राम स्वराज्य का अर्थ समझते थे और सक्रिय भी थे किंतु विनोबा जी समझते तो थे परंतु सक्रिय नहीं थे। ग्राम स्वराज्य का अर्थ होता है स्वराज्य ग्राम। आदर्श ग्राम, स्वराज्य का परिणाम होता है कारण नहीं। विनोबा जी ने आदर्श ग्राम को ही स्वराज्य ग्राम समझने की भूल की। गांधी जी के मरते ही नेताओं ने वर्धा में बैठकर विनोबा जी को आदर्श ग्राम समझाया। विनोबा जी पूरी ईमानदारी और मेहनत से नेताओं का काम करने लगे। नेता लोगों ने सारा देश मनमाना लूटा, समाज को गुलाम बनाया और विनोबा जी समाज निर्माण करते रहे। भूदान आंदोलन का ग्राम स्वराज्य से कोई सम्बन्ध नहीं था।

(415) गांधी जी ने शासन मुक्ति तथा शोषण मुक्ति के लिए तीन प्राथमिकताएं बताई थीः— (1) गांव को अपने गांव सम्बन्धी निर्णय की अधिकतम स्वतंत्रता। (2) ग्रामवासियों को ऐसी स्वतंत्रता के सदुपयोग का प्रशिक्षण। (3) समाज में शारीरिक श्रम के महत्व और सम्मान का अधिकतम विकास। स्वतंत्रता से अब तक भारत तीनों ही दिशाओं में उल्टा चल रहा है।

आदर्श लोकतंत्रः—

(420) लोकतंत्र दो प्रकार का है आदर्श और विकृत। आदर्श लोकतंत्र जीवन पद्धति से शुरू हो कर शासन पद्धति तक जाता है तो विकृत लोकतंत्र सीधा शासन पद्धति तक आ जाता है। भारत में विकृत लोकतंत्र है। आदर्श लोकतंत्र लोक स्वराज्य की ओर झुका होता है तो विकृत लोकतंत्र तानाशाही की ओर झुका हुआ। पश्चिम के देशों में लोकतंत्र जीवन पद्धति से शासन पद्धति तक गया तो दक्षिण एशिया के देशों में सीधा शासन पद्धति तक आया।

ग्राम संसद/संविधान सभाः–

(430) ग्राम संसद का अर्थ प्रत्येक ग्राम सभा को अपना आंतरिक संविधान बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान निर्माण में सहभागिता का होना है।

संविधान सभाः–

(440) राजनैतिक व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए एक संविधान सभा बनाने के प्रस्ताव पर विचार करना चाहिए।

संविधान सभा का प्रारूपः–

(441) वर्तमान लोकसभा के समकक्ष एक संविधान सभा हो। संविधान सभा की सदस्य संख्या, चुनाव प्रणाली तथा समय सीमा वर्तमान लोक सभा के समान हो। चुनाव भी लोकसभा के साथ हो किन्तु चुनाव दलीय आधार पर न होकर निर्दलीय आधार पर हों।

(442) संविधान सभा के निम्न कार्य होगेंः–(क) लोकपाल समिति का चुनाव। (ख) संसद द्वारा प्रस्तावित संविधान संशोधन पर निर्णय या संसद के समक्ष प्रस्ताव। (ग) सांसद, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, मंत्री या राष्ट्रपति के वेतन भत्ते सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार और निर्णय। (घ) किसी सांसद के विरूद्ध उसके निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत सरपंचो के बहुमत से प्रस्तावित अविश्वास पस्ताव पर विचार और निर्णय। (च) लोकपाल समिति के भ्रष्टाचार के विरूद्ध शिकायत का निर्णय। (छ) व्यक्ति, परिवार, ग्राम सभा, जिला सभा, प्रदेश, सरकार तथा केन्द्र सरकार के आपसी सम्बन्धों पर विचार और निर्णय। (ज) अन्य संवैधानिक इकाइयों के बीच किसी प्रकार के आपसी टकराव के न निपटने की स्थिति में विचार और निर्णय।

(443) लोक सांसद का कोई वेतन तथा भत्ता नहीं होगा। बैठक के समय भत्ता प्राप्त होगा। संविधान सभा का कोई कार्यालय या स्टाफ नही होगा। लोकपाल समिति का कार्यालय तथा स्टाफ ही पर्याप्त रहेगा।

(444) यदि किसी प्रस्ताव पर संविधान सभा तथा लोक सभा के बीच अंतिम रूप से टकराव होता है तो उसका निर्णय जनमत संग्रह से होगा।

महात्मा गांधीः—

(450) सत्य और अहिंसा के मार्गदर्शन में तत्कालीन समस्याओं के समाधान का प्रयास ही गांधी मार्ग होता है।

(451) गांधी गुण प्रधान धर्म मानते थे और संगठन प्रधान धर्म के विरुद्ध थे। गांधी अहिंसा को शस्त्र की तरह प्रयोग करते थे सिद्धांत के रूप में नहीं। गांधी हिंसा की तुलना में अहिंसा और कायरता की तुलना में हिंसा को ठीक मानते थे।

(452) गांधी पूरी तरह समझदार थे। उनकी नीति और नीयत दोनों ठीक थी। उस समय के कालखंड के लिए वह महा—मानव थे।

गांधीवादीः—

(453) गांधीवादी आमतौर पर बहुत शरीफ, ईमानदार, परिश्रमी तथा शांतिप्रिय होते हैं। गांधी के मरते ही नेतृत्व का अभाव हुआ और गांधीवादी, साम्यवादियों की बी टीम बन गए। गांधीवादियों में संघर्ष की जगह कायरता आई। वर्तमान समय में गांधीवादियों का एकमात्र कार्य है नक्सलवाद की सुरक्षा तथा इस्लाम की वकालत। हर गांधीवादी आंख बंद करके तब तक मोदी विरोधी है जब तक साम्यवादी और मुसलमान मोदी विरोधी हैं।

विनोबाः—

(454) विनोबा में समझदारी की तुलना में शराफत अधिक थी। गांधी की सर्वोच्च प्राथमिकता थी राजनैतिक गुलामी से संघर्ष तो विनोबा की प्राथमिकता थी आदर्श समाज निर्माण। विनोबा आदर्श समाज बनाते रहे और राजनेताओं ने सारे देश के अधिकार लूट कर उन्हें स्वदेशी गुलाम बना लिया।

सुभाष चंद्र बोसः—

(455) स्वतन्त्रता आन्दोलन में सुभाष बाबू की नीयत और त्याग बहुत अच्छा था किन्तु नीतियां गलत। सुभाषबाबू स्वतंत्रता के बाद कुछ वर्षो तक तानाशाही के पक्षधर थे। उन्होंने जर्मनी, जापान के साथ समझौता करके गलती की। यदि भारत उनकी राह पर चला होता तो भारत स्वतंत्र हो ही नहीं पाता जैसा कि जर्मनी का हाल हुआ। सुभाष बाबू ने आसाम में आक्रमण करके भूल की जिसमें लगभग एक लाख भारतीय सैनिक मारे गए।

भगत सिंहः—

(456) सभी क्रांतिकारियों का त्याग और नीयत बहुत अच्छी थी और मार्ग गलत। यदि गांधी अपना मार्ग छोड़कर क्रांतिकारियों के साथ हो जाते तो गांधी भले ही शहीद हो जाते किन्तु स्वतंत्रता आन्दोलन को कोई लाभ नहीं होता। यदि क्रांतिकारी गांधी के साथ हो जाते तो स्वतंत्रता और जल्दी मिल सकती थी। पटना में झंडा फहराने के क्रम में जो अहिंसक सात लोग शहीद हुए उनका त्याग क्रांतिकारियों के त्याग से कुछ अधिक मानना चाहिए।

तानाशाही, लोकतंत्र और लोकस्वराज्यः–

(460) लोकतंत्र में संविधान का शासन और तानाशाही में शासन का संविधान होता है। शासक तंत्र तथा सरकार एक ही होते हैं। लोकतंत्र में लोक नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित तंत्र, तंत्र नियंत्रित व्यक्ति होता है। तानाशाही में तंत्र ही संविधान पर नियंत्रण करता है, तंत्र ही कानून भी बनाता है तथा तंत्र ही क्रियान्वयन भी करता है। आदर्श लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा और उदंडता पर नियंत्रण की गारंटी होती है। विकृत लोकतंत्र में स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी किन्तु उदंडता अनियंत्रित होती है। तानाशाही में स्वतंत्रता भी नहीं होती तथा उदंडता भी नहीं होती। भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्रता पर नियंत्रण है और उदंडता पर छूट है। पश्चिम का लोकतंत्र विकृत, चीन उत्तर कोरिया में तानाशाही, भारत, पाकिस्तान, लंका में लोकतांत्रिक तानाशाही है। आदर्श लोकतंत्र अभी कल्पना में हैं।

(461) वर्तमान विश्व में तीन प्रकार की तानाशाही है– व्यक्ति की, समूह की, तन्त्र की। उत्तर कोरिया में व्यक्ति की, चीन में समूह की, भारत जैसे देशों में तन्त्र की तानाशाही है। व्यक्ति या समूह की तानाशाही में व्यक्ति के मौलिक अधिकार नहीं होते जैसा उत्तरकोरिया या चीन में है। ऐसे देशों में तंत्र की नियुक्ति में भी वहाँ के नागरिको की कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं होती। जहा सिस्टम की तानाशाही होती है वहां व्यक्ति के मौलिक अधिकार भी होते हैं तथा तंत्र नियुक्ति में भी लोक की स्वतंत्र भूमिका होती है किन्तु तन्त्र की तानाशाही में भी संविधान, कानून और क्रियान्वयन पर तंत्र का ही एकाधिकार होता है। भारत सहित दक्षिण एशिया के देशों में सिस्टम की तानाशाही है। अभी इसे ही हम लोकतंत्र के नाम से पुकारते हैं जो विकृत या संसदीय लोकतंत्र है। आदर्श लोकतंत्र को लोकस्वराज्य या सहभागी लोकतंत्र कहते हैं। तानाशाही से लोकतंत्र इसलिए अच्छा होता है कि लोकतंत्र से लोक स्वराज्य की ओर जाना आसान है, तानाशाही में कठिन।

(462) साम्यवाद और तानाशाही में सिर्फ इतना ही अंतर है कि साम्यवाद एक व्यक्ति की तानाशाही न होकर एक वर्ग या समूह की तानाशाही होता है।

(463) (1) प्रजातंत्र या लोकतंत्र में कानून का शासन होता है। कानून तंत्र का होता है। आम नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं। (2) विकृत लोकतंत्र में शासक आम नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। चुने हुए लोगों को संविधान संशोधन का पूरा अधिकार होता है। व्यवस्था में नागरिक सहयोगी होते हैं सहभागी नहीं। संसद की

भूमिका कस्टोडियन की होती है। (3) आदर्श लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र और लोक स्वराज्य समान अर्थ के होते हैं। स्वराज्य और विकृत लोकतंत्र में यह अंतर होता है कि विकृत लोकतंत्र में जनता द्वारा चुने हुए लोग शासक होते है जबकि स्वराज्य में जनता द्वारा चुने हुए लोग व्यवस्थापक होते हैं। स्वराज्य में चुने हुए लोगों को संविधान संशोधन में प्रस्तावक तक की भूमिका होती है, सम्पूर्ण नहीं। व्यवस्था में नागरिक सहभागी होते हैं सिर्फ सहयोगी नहीं। संसद की भूमिका मैनेजर की होती है।

व्यवस्थाः—

(464) (क) तानाशाही में या तो सुव्यवस्था होती है या कुव्यवस्था। न अव्यवस्था सम्भव है न स्वव्यवस्था। (ख) लोकतंत्र में या तो अव्यवस्था होती है या स्वव्यवस्था इसमें न सुव्यवस्था सम्भव है न कुव्यवस्था। लोकतंत्र की दो स्थितियां होती हैंः— (1) लोकतांत्रिक जीवन पद्धति (2) लोकतांत्रिक शासन पद्धति। पश्चिम के देशों में जीवन पद्धति से लोकतंत्र आया, किन्तु भारत, पाकिस्तान, इराक, अफगानिस्तान, बांग्लादेश आदि में शासन पद्धति में। जीवन पद्धति का लोकतंत्र व्यवस्था को मजबूत करता है और शासन पद्धति का लोकतंत्र कमजोर। एसी लोकतांत्रिक शासन पद्धति में अव्यवस्था ही होती है। न सुव्यवस्था न कुव्यवस्था। लम्बे समय की अव्यवस्था तानाशाही का आधार बनती है। पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका, अफगानिस्तान, इराक, नेपाल आदि देशों का यही हाल है। भारत भी ऐसे खतरे की ओर लगातार बढ़ रहा है। (ग) आदर्श स्थिति में अव्यवस्था, कुव्यवस्था से कम खराब होती है और स्वव्यवस्था सुव्यवस्था से अच्छी। व्यावहारिक धरातल पर अव्यवस्था, कुव्यवस्था से अधिक खराब होती है और सुव्यवस्था, स्वव्यवस्था से अच्छी। आदर्श स्थिति में स्वव्यवस्था के साथ अव्यवस्था का खतरा बना रहता है जबकि व्यवहारिक धरातल पर सुव्यवस्था के साथ कुव्यवस्था का खतरा बना रहता है ।

(465) भारत में मनमोहन सिंह के समय लोकतांत्रिक शासन पद्धति रही है जिसके लक्षण अव्यवस्था के रूप में स्पष्ट हैं और परिणाम है तानाशाही का खतरा। ऐसे खतरे का समाधान लोकतंत्र का शासन पद्धति के स्थान पर जीवन पद्धति की ओर ले जाना है जिसका मार्ग सुशासन के स्थान पर स्वशासन अर्थात् लोकस्वराज्य है। इसे ही सहभागी लोकतंत्र या स्वशासन भी कहा जाता है।

(466) विश्व के अधिकांश भाग में लोकतंत्र की वर्तमान परिभाषा ''लोक नियुक्त तंत्र'' है अथात् समाज द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों का शासन। इस परिभाषा को बदल कर लोक नियंत्रित तंत्र अर्थात् ''समाज द्वारा नियंत्रित शासन कर देना चाहिए''।

(467) तानाशाही में विकास की गति अन्य प्रकार की व्यवस्थाओं की तुलना में बहुत तेज होती है। तानाशाही में शासक, मालिक और जनता गुलाम होती है। तानाशाही में व्यक्ति को राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता है तो राष्ट्र को अपनी सम्पत्ति। लोकतंत्र और लोकस्वराज्य में व्यक्ति समाज का अंग माना जाता है। चीन, उत्तर कोरिया में व्यक्ति को राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता है, मुस्लिम देशों में धार्मिक सम्पत्ति। चीन,

उत्तरकोरिया, वियतनाम तथा मुस्लिम देशों में व्यक्ति को मौलिक अधिकार नहीं होते। भारत सहित अन्य लोकतांत्रिक देशों में मौलिक अधिकार होते हैं।

(468) तानाशाही अच्छा समाधान होते हुए भी अच्छी व्यवस्था नहीं मानी जाती। तानाशाही बीमारी की दवा तो है किन्तु टॉनिक नहीं। लोकतंत्र असफल होते हुए भी तानाशाही से अच्छा माना जाता है। तानाशाही और लोकतंत्र का क्रम चलता रहता है। भारत में बढ़ती अव्यवस्था के कारण जनता ने तानाशाही को पसंद किया। भारत धीरे–धीरे सुव्यवस्था की दिशा में बढ़ रहा है। लोकतंत्र स्वराज्य व्यवस्थाओं का कोई स्थायी समाधान नहीं होता है क्योंकि लोकतंत्र का परिणाम अव्यवस्था और समाधान तानाशाही है। इन सब समस्याओं का स्थायी समाधान 'लोकस्वराज्य' है। वर्तमान विश्व में यह नारा प्रचलित होना चाहिएः– ''हमें सुराज नहीं, स्वराज चाहिए।''

निजीकरणः–

(470) राजनैतिक प्रशासनिक व्यवस्था का व्यापार व्यवस्था पर सम्पूर्ण अधिकार राष्ट्रीयकरण होता है। प्रशासन के हस्तक्षेप से मुक्त व्यापार निजीकरण है। अपनी आंतरिक सीमा में प्रशासनिक आर्थिक व्यवस्था की छूट तथा परिवार, गांव, जिले को अपनी सीमा मे प्रशासनिक आर्थिक स्वतंत्रता समाजीकरण है। राष्ट्रीयकरण बहुत घातक व्यवस्था है। किसी भी प्रकार का राष्ट्रीयकरण नहीं होना चाहिए। निजीकरण राष्ट्रीयकरण की तुलना में बहुत अच्छी व्यवस्था है। समाजीकरण सबसे अच्छी व्यवस्था है। भ्रष्टाचार दूर करने मे निजीकरण बहुत सहायक होता है।

केन्द्रीयकरणः–

(471) तीन विषयों का केन्द्रीयकरण घातक होता हैः– (1) राजनैतिक शक्ति का लोक से निकलकर तंत्र के पास इकट्ठा होना। (2) आर्थिक शक्ति का गरीबों के हाथ से निकलकर अमीरों के पास इकट्ठा होना। (3) रोजगार के लाभ का श्रम के हाथ से निकलकर बुद्धि के पास इकट्ठा होना। वर्तमान भारत में तीनों केन्द्रित हो रहे हैं।

पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और नक्सलवादः–

(480) दुनिया के अलग–अलग दशों में पूंजीवाद तथा लोकतंत्र, साम्यवाद तथा तानाशाही या धर्म तथा तानाशाही एक साथ जुड़कर काम करते है। लोकतंत्र की अपेक्षा तानाशाही अधिक सफल किन्तु अमानवीय व्यवस्था है। लोकतंत्र तथा पूंजीवाद असफल किन्तु मानवीय व्यवस्था मानी जाती है।

(481) दुनिया में श्रम शोषण के दो केंद्र बनेः– (1) पूँजीवाद (2) साम्यवाद। पूँजीवादी श्रम शोषण प्रत्यक्ष था जबकि साम्यवाद का धोखाधड़ी। दुनियां का हर साम्यवादी अच्छी

तरह जानता है कि कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से श्रम की मांग और मूल्य बढ़ जाएगा। कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध करन में साम्यवादी सबसे आगे रहते हैं।

(482) भारत के सभी वामपंथी बिजली उत्पादन वृद्धि का पूरी ताकत से विरोध करते हैं। बिजली उत्पादन वृद्धि का डीजल, पेट्रोल खपत पर विपरीत प्रभाव होता है और तेल उत्पादक के हितों को नुकसान होता है।

(483) समाजवाद राजनैतिक रूप से लोकतंत्र और आर्थिक रूप से तानाशाही का मिला हुआ स्वरूप है। समाजवाद का वास्तविक अर्थ व्यवस्थाओं पर समाज की प्रभुता होता है । समाजवाद ही लोकस्वराज्य है। चालाक लोगों ने समाजवाद शब्द का दुरूपयोग किया। यह भी हो सकता है कि साम्यवाद की सफलता की तेज गति स बचने के लिए समाजवाद शब्द का उपयोग किया।

नक्सलवादः–

(484) वर्तमान असफल होती जा रही व्यवस्था के विरूद्ध हथियार उठा लेने का नाम नक्सलवाद है। नक्सलवाद साम्यवाद का अतिवादी तथा अलोकतन्त्रीय स्वरूप माना जाता है। यद्यपि अनेक अपराधी तत्व भी इनमें प्रवेश कर रहे हैं। यदि व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन नहीं होगा तथा लोगों को न्याय नहीं मिलेगा तो लोग हथियार उठा लेंगें। ऐसे लोगों को नक्सलवादी कहकर गोली मारने से भी ऐसी हिंसक क्रान्ति नहीं दबेगी।

(485) नक्सलवादियों के पास वर्तमान व्यवस्था को शक्ति से हटाने की योजना तो है किन्तु भविष्य के लिए किसी सम्भावित व्यवस्था का प्रारूप नहीं। व्यवस्था परिवर्तन के उद्दश्य से शुरू हुई हिंसक क्रान्ति का नाम नक्सलवाद है तथा अहिंसक क्रान्ति का नाम लोक स्वराज्य है। वर्तमान समय में नक्सलवाद भटक कर सत्ता परिवर्तन बन गया है। वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था का प्रारूप बनाकर उसे अहिंसक तथा प्रजातांत्रिक तरीके से स्थापित करने का प्रयास ही नक्सलवाद का समाधान है।

(486) नक्सलवाद और डकैती–लूट में स्पष्ट अंतर है। डकैती पूरी तरह समाज विरोधी कार्य है और नक्सलवाद व्यवस्था (सरकार) विरोधी।

(487) वर्तमान नक्सलवाद में दूर दूर तक व्यवस्था परिवर्तन का कोई उद्देश्य नहीं है। नक्सलवाद पूरी तरह सत्ता संघर्ष है।

रामराज्यः–

(491) रामराज्य की सफलता का आँकलन अपराध नियंत्रण की सफलता पर निर्भर रहता है। रामराज्य की एक ही परिकल्पना है 'अपराध मुक्त समाज'। मंदिरों या मस्जिदों की संख्या रामराज्य का आधार नहीं बन सकती हैं।

ज्ञान और त्यागः–

(492) पुराने समय में ''ज्ञान और त्याग'' को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। कालान्तर में धन और पद भी इस प्रतिस्पर्धा में शामिल हो गए। धूर्तता और गुण्डागर्दी के सम्मिलित हो जाने के बाद सर्वोच्च सम्मान की प्रतिस्पर्धा से 'ज्ञान और त्याग' तो बाहर हो चुके हैं, धन और पद भी पिछड़ते जा रहे हैं।

भाग 5 राजनैतिक

समस्याएँः—

(500) भारत में पांच प्रकार की आन्तरिक समस्याएँ हैंः— (1) वास्तविक (2) कृत्रिम (3) प्राकृतिक (4) भूमण्डलीय (5) भ्रम ।

(501) वास्तविक समस्याएँ वे होती हैं जिनका अस्तित्व है और जो मानवीय स्वभाव से पैदा होती हैं किंतु जिनका अब तक समाधान नहीं हो सका है। ये समस्याएं राज्य की निष्क्रियता के कारण बढ़ती हैं। इनमें चोरी—डकैती—लूट, बलात्कार, मिलावट—कमतौल, जालसाजी, धोखाधडी, हिंसा, बलप्रयोग, आतंकवाद आदि शामिल हैं।

(502) कृत्रिम समस्याएँ वे होती है जिनका अस्तित्व तो है किन्तु वे मानवीय स्वभाव से पैदा न होकर राज्य की अति सक्रियता के कारण पैदा होती हैं। ऐसी समस्याओं में चरित्र पतन, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता, आर्थिक असमानता, श्रमशोषण आदि शामिल है।

(503) प्राकृतिक समस्याएँः—भूकम्प, बाढ़, बीमारियाँ, तूफान आदि ।

(504) भूमण्डलीय समस्याएँः—पर्यावरण प्रदूषण, आबादी वृद्धि, जल का अभाव, अकाल, बीमारी, कोरोना, भूकम्प आदि।

(505) भ्रम—महंगाई, गरीबी, अशिक्षा, मुद्रा स्फीति का दुष्प्रभाव, शिक्षित बेरोजगारी, बालश्रम महिला उत्पीड़न, भूख, दहेज, सतीप्रथा आदि। ये ऐसी समस्याएँ हैं जो या तो अस्तित्व हीन हैं या जिनका कम होना समाज सशक्तिकरण में सहयोगी है किन्तु कोई गंभीर समस्या नहीं।

(506) वर्तमान भारत में राज्य सबसे ज्यादा अस्तित्वहीन समस्याओं के समाधान में शक्ति लगाता है और वास्तविक समस्याओं के समाधान में सबसे कम; जबकि राज्य की प्राथमिकताओं के क्रम में वास्तविक समस्याओं का स्थान सबसे ऊपर तथा अन्य का क्रमशः बाद में होना चाहिए। समस्याओं के समाधान में हमारी प्राथमिकताएं निम्न क्रम में होनी चाहिएः— (1) वास्तविक (2) कृत्रिम (3) प्राकृतिक (4) भूमण्डलीय। भ्रम को पूरी तरह दूर कर देना चाहिए। भारत में सरकार विपरीत क्रम से प्राथमिकता निर्धारित करती है।

शासकः—

(510) लोकतंत्र में निर्वाचित इकाई की यह अन्तिम सीमा होती है कि वह मालिक नहीं हो सकती, प्रबंधक, प्रतिनिधि, संरक्षक हो सकती है। वर्तमान विश्व में तंत्र ने स्वयं को

शासक और लोक को शासित मान भी लिया और कहना भी शुरू कर दिया। यही तथ्य और शब्द भारत में प्रचलित हुआ जो गलत है।

(511) राज्य समाज के प्रबन्ध के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता भी है और बुराई भी जैसे किसी गाड़ी के लिए ब्रेक। गाड़ी ब्रेक रहित नहीं, ब्रेक मुक्त होनी चाहिए। हमारे समाज को कभी भी किन्हीं भी परिस्थितियों में शासन पर पूरी तरह निर्भर नहीं हो जाना चाहिए। समाज सर्वोच्च है और शासन समाज का अंग होता है। शासन द्वारा सर्वोच्च बनने का प्रयास करना अनाधिकार चेष्टा है, परन्तु शासन सफलतापूर्वक यह प्रयास कर रहा है।

(512) अधिकारों का राजनीतिज्ञों के पास अधिकाधिक ध्रुवीकरण राजनीतिज्ञों के दूषित व्यवहार या आचरण का कारण है। समाज को चाहिए कि ऐसे ध्रुवीकरण को रोके। अधिकारविहीन समाज और सर्वाधिकार सम्पन्न शासन की स्थापना अनुचित और अवांछनीय है।

(513) समाज के अनेक प्रवक्ता किसी धर्म, राजनीतिक दल, निश्चित धारणा वाले गुट, राष्ट्रीय आदि भिन्न–भिन्न रंग के चश्में से वास्तविकताओं को देखकर तदनुसार उनका विश्लेषण करते हैं। समाज को किसी व्यक्ति या समूह द्वारा प्रस्तुत किसी विश्लेषण पर विचार करने के पूर्व उसके विचारों की प्रतिबद्धता को देख लेना चाहिए कि वह धर्म, राजनीति आदि में किसी प्रकार से प्रतिबद्ध तो नहीं है।

(514) हमारे विधायक या सांसद क्षेत्र से प्रतिनिधित्व करते हं, क्षेत्र का नहीं। वे कानून बनाने के लिए नियुक्त होते हैं। वे कानून बनाने में गंभीर न होकर नल, बिजली, नियुक्ति, सड़क आदि वह तमाम कार्य करते हैं जो कि एक सामान्य कर्मचारी का होता है।

(515) कानूनी समस्याओं का कानूनी समाधान, आर्थिक समस्याओं का आर्थिक समाधान तथा सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान खोजा जाना चाहिए। वर्तमान समय में कानूनी समस्याओं का सामाजिक समाधान खोजा जा रहा है। डकैती उन्मूलन हेतु हृदय परिवर्तन को उचित मार्ग बताया जाता है और छुआछूत, दहेज, शराब–बंदी, आदि सामाजिक समस्याओं के लिए कानूनों का सहारा लेने की मांग की जाती है जो उचित नहीं है।

(516) न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका का अपनी–अपनी सीमाओं और मर्यादाओं में रहना चाहिए किन्तु ये सभी अपनी सर्वोच्चता सिद्ध करने में लगे हैं।

राजनीतिः–

(520) किसी भी राजनैतिक दल के पास समाज की प्रमुख समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। फिर भी भारत में लगातार सत्ता का राजनीतिज्ञों के हाथों में केन्द्रीयकरण हो रहा है। वर्तमान में पंचायत व्यवस्था में, कुछ और व्यवस्था जनता के हाथ से निकलकर नए नेताओं के पास केन्द्रित हो जाएगी।

(521) भारत की संवैधानिक व्यवस्था में सबसे अधिक गिरावट राजनैतिक व्यवस्था में आई है और सबसे कम न्यायपालिका में। भ्रष्टाचार के मामले में भी राजनैतिक व्यवस्था सबसे ऊपर है और सत्ता के दुरूपयोग के मामले में भी। राजनीति में भ्रष्ट लोगों का प्रतिशत व्यापारियों या शासकीय कर्मचारियों से भी अधिक है। परन्तु हर नेता दूसरे सभी वर्गो को भ्रष्ट या चोर कहकर स्वयं को ईमानदार कहता है। राजनैतिक व्यवस्था के पतन का मुख्य कारण यह है कि राजनैतिक व्यवस्था ही विधायिका भी है और कार्यपालिका भी। इसी व्यवस्था ने संविधान संशोधन तक का अधिकार अपने पास समेट लिया है।

(522) भारत में राजनीति का स्वरूप संसद एक मंदिर, संविधान भगवान, नेता पुजारी, अच्छी दुकानदारी।

(523) राजनीति बन गई तवायफ नेता हुए दलाल,
ऐसे में क्या होगा भईया इस समाज का हाल।
संसद को एक पलंग समझ कर उस पर शयन किया,
संविधान को मान के चादर खींचा ओढ़ लिया।
अब तक हमने बहुत सहा,
अब सहेगें नही,
हम चुप रहेगें नहीं।
चादर हटा देगें हम,
सब कुछ दिखा देगें हम।
कचरा जला देगे हम।

(524) जहाँ भी आदर्श लोकतंत्र होता है वहाँ राजनीति में परिवारवाद का कोई खतरा नहीं होता। भारत में अब तक विकृत लोकतंत्र रहने के कारण राजनीति में पूरी तरह परिवारवाद रहा है। दल बदल कानून ने इस परिवारवाद को और अधिक मजबूत कर दिया। मोदी के आने के बाद यह कडो कुछ कमजोर होती दिख रही है।

राजनैतिक दलः—

(525) भारतीय राजनीति में किसी भी राजनैतिक दल में आन्तरिक लोकतंत्र नहीं है। मरणासन्न साम्यवादियों में पच्चीस प्रतिशत कहा जा सकता है। जेडीयू में भी अब नाम मात्र ही बचा है। भाजपा में जब तक संघ, भाजपा की मिली जुली सरकार है तब तक पचास प्रतिशत लोकतंत्र कहा जा सकता है।

(526) कांग्रेस पार्टी किसी भी उचित–अनुचित तरीके से सत्ता में बने रहना चाहती है। जनता दल जातीय, भाजपा साम्प्रदायिक, साम्यवादी आर्थिक ध्रुवीकरण कराकर सत्ता परिवर्तन का प्रयास कर रहे हैं। कई दल क्षेत्रीयता की भावना भड़का कर प्रांतीय सत्ता से ही संतोष करने को तैयार हैं। कोई भी दल शराफत के आधार पर ध्रुवीकरण का प्रयास नहीं कर रहा है।

(527) मनमोहन सिंह सबसे अधिक लाकतांत्रिक प्रधानमंत्री हुए हैं। उनके दूसरे कार्यकाल में सोनिया गांधी ने पुत्र मोह में पड़कर उनको कमजोर किया।

(528) वर्तमान भारत में संघ भाजपा की मिली जुली सरकार पूरी तरह सफल है। मोदी जी के कार्यकाल में देश नए कीर्तिमान बना सकता है। मेरा अनुमान है कि मोदो जीवन भर प्रधानमंत्री रह सकते हैं। वर्तमान भारतीय राजनीति में मोदी जी के बाद नीतिश कुमार और अरविन्द केजरीवाल ही कुछ योग्यता रखते हैं। अखिलेश यादव का परीक्षण अभी बाकी हैं। राजनीति को गंदा करने में कुछ नाम महत्वपूर्ण हैंः– लालू प्रसाद, शिबू सोरेन, मुलायम सिंह, मायावती, रामविलास पासवान, ममता बनर्जी, जयललिता, करूणानिधि, अजित जोगी, येदुरप्पा, प्रकाश करात, विजयन, दिग्विजय सिंह आदि तो दूसरी ओर राजनीति को साफ रखने वालों में मनमोहन सिंह, नरेन्द्र मोदी, बाबूलाल मरांडी, शान्ता कुमार, अच्युतानन्दन, बुद्धदेव भट्टाचार्य, सोमनाथ चटर्जी, नीतिश कुमार, अरविन्द केजरीवाल, राहुल गांधी, नवीन पटनायक, ए.के. एन्टोनी, अखिलेश यादव आदि का नाम लिया जा सकता है।

स्वदेशीः–

(530) वर्तमान दुनिया में चार प्रकार की व्यवस्थाएँ हैंः– (क) व्यक्ति प्रधान, (ख) धर्म प्रधान, (ग) राज्य प्रधान, (घ) समाज प्रधान। लोकतांत्रिक देशों की व्यवस्था में व्यक्ति महत्वपूर्ण है। इस्लामी देशों में धर्म महत्वपूर्ण है। साम्यवादी देशों में राज्य शक्तिशाली है। भारत में सबका घालमेल है। समाज किसी व्यवस्था में प्रमुख नहीं। भारत के राजनैतिक संवैधानिक स्वरूप में समाज प्रमुख होना चाहिए, धर्म, राज्य, और व्यक्ति सहायक।

(531) भारत के राजनैतिक संवैधानिक स्वरूप निर्माण में लगे अधिकांश व्यक्ति या संगठन बिकाऊ हैं। ये लोग पूँजीवादी, साम्यवादी एवं इस्लामिक देशों से गुप्त धन ले लेकर पहली प्रमुख पाँच समस्याओं को कम और दूसरी छः को अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित करते रहते हैं। कई व्यक्ति या संगठन पूँजीवादी देशों से धन लेकर बाल

विवाह, बालश्रम, बढ़ती आबादो, पर्यावरण प्रदूषण, नशा वृद्धि जैसी समस्याओं को ही समाज की सबसे बड़ी समस्या सिद्ध करते हैं तो कुछ अन्य साम्यवादी देशों से धन ले लेकर महंगाई, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, सामाजिक असमानता, भूख, गरीबी जैसी समस्याओं को। कुछ अन्य लोग इस्लामिक देशों से धन ले लेकर उनकी ही चापलूसी करते रहते हैं। ये भारत में अल्पसंख्यक सुरक्षा को ही सबसे बड़ी जरूरत बताते रहते हैं। भारत की सरकारें विदेशों से धन ले लेकर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में फेर बदल करती हैं। राजनैतिक दल भी विदेशों से गुप्त धन लेकर उनकी चापलूसो करते रहते हैं और कई राजनैतिक व्यक्ति भी विदेशी धन लेकर उनकी दलाली करते हैं। अब तो भारत की अनेक सामाजिक संस्थाएँ भी विदेशों से धन लेकर असत्य या कम महत्व की समस्याओं को आगे करती हैं और महत्वपूर्ण समस्याओं को पीछे कर देती हैं। यह पहचानना ही कठिन है कि कौन व्यक्ति, दल या संस्था विदेशी दलाल हैं और कौन नहीं। ऐसा महसूस होता है कि भारत का हर महत्वपूर्ण विचार बिकाऊ हो गया है।

(532) भारत की सभी समस्याओं के समाधान के लिए एक स्वदेशी संविधान की आवश्यकता है जो स्वदेशी व्यवस्था बना सके। दुर्भाग्य से हमारे अनेक विद्वान साबुन, वस्त्र और स्वदेशी शीतल पेय को ही स्वदेशी का प्रतीक प्रमाणित करने पर अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। स्वदेशी आंदोलन स्वदेशी शब्द का अर्थ ही नहीं समझता है।

(533) भारत में वर्तमान समय में एक भी ऐसा राजनैतिक सामाजिक आंदोलन नहों है जो राज्य के अधिकारों की समीक्षा की चिन्ता करे। सभी आंदोलन राज्य के गलत आदेशों के विरोध तक सीमित हैं। गांधी, विनोबा, जयप्रकाश, ने अपना सम्पूर्ण जीवन राज्य के अधिकारों की समीक्षा में लगा दिया। गांधीवादी, गांधी, विनोबा, जयप्रकाश के नाम पर उनको विरासत के तो मालिक हैं किन्तु राज्य के अधिकारों की चिन्ता न करके आदेशों की समीक्षा और विरोध तक सीमित हो गए हैं।

(534) वर्तमान सभी समस्याओं का समाधान एक ऐसे स्वदेशी आंदोलन से सम्भव है:– (क) जो राज्य के आदेशों के विरूद्ध नहीं, अधिकारों के विरूद्ध आंदोलन करे। (ख) विदेशी या भारतीय पूँजीपतियों के गुप्त धन से संचालित न हो। (ग) स्वदेशी को उसकी गलत परिभाषा से निकालकर स्वदेशी शासन व्यवस्था और स्वदेशी संविधान की ओर ले जाए। (घ) चरित्र और विचार के अनुपात में विचार को चरित्र से कम महत्वपूर्ण न माने।

(535) स्वदेशी का प्रचार पूरी तरह अनावश्यक और भ्रामक है। हम विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करें और विवाह करने के लिए विदेशी चुनें यह ढोंग है। या तो स्वदेशी की जगह स्थानीयता पर जोर दें या स्वदेशी, विदेशी के चक्कर में न पड़ें। स्वदेशी का अर्थ स्थानीय होना चाहिए राष्ट्रीय नहीं।

राष्ट्रीयताः—

(536) राष्ट्र विश्व व्यवस्था में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। राष्ट्रीयता का भाव उचित है और राष्ट्रवाद घातक। राष्ट्रवादी लोग समाज की अपेक्षा राष्ट्र को ऊपर मानते हैं जो उचित नही है। आज दुनिया में अन्याय, अत्याचार या अपराध में अंध राष्ट्रवाद की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

गुलामीः—

(537) गुलामी किसी भी परिस्थिति में अच्छी नहीं होती है।

(538) भारत कई सौ वर्षों तक गुलाम रहा है। पहले मुसलमानों ने भारत को गुलाम बना कर रखा तो बाद मे अंग्रेजों ने। मुसलमानो की तुलना में अंग्रेजों का कार्यकाल बहुत कम बुरा था क्योंकि मुसलमान तानाशाह थे और अंग्रेज लोकतांत्रिक।

(539) अंग्रेजों के जाने के बाद भारत राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र हो गया किन्तु सामाजिक तथा वैचारिक स्तर पर अब भी गुलाम है। समाज पहले विदेशी लोहे की जंजीरों से बंधा था तो अब जंजीर का लोहा स्वदेशी हो गया है।

भारत विभाजनः—

(540) भारत विभाजन उचित नहीं था। गांधी विभाजन के विरूद्ध थे किन्तु साम्प्रदायिक शक्तियां और राजनीतिक स्वार्थ के एक दूसरे से जुड़ जाने की स्थिति में गांधी विचार का परास्त होना निश्चित हो गया था। स्वतंत्रता के पूर्व भी यही हुआ और स्वतंत्रता के बाद भी। इसलिए भारत विभाजन उस समय की मजबूरी थी। जिन्ना तथा सावरकर ने अंग्रेजों के साथ मिलकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कोई उपाय नहीं था। गांधी भारत विभाजन के खिलाफ थे। भारत विभाजन कराने में सरदार पटेल की भूमिका सबसे अधिक रही। सरदार पटेल ने कहीं भी विभाजन का खुलकर विरोध नहीं किया। नेहरू और पटेल की सहमति के बाद गांधी मजबूर हो गए। गांधी हत्या के बाद सब नेताओं ने उचित समझा कि विभाजन का सारा दोष गांधी पर डाल दिया जाए। नेहरू को बचाना कांग्रेस की मजबूरी थी तो सावरकर और पटेल को बचाना संघ की।

(541) भारत की स्वतंत्रता में जिन्ना, संघ, अम्बेडकर और कम्युनिस्टों की कोई भूमिका नहीं थी। जहाँ गांधी सामाजिक स्वतंत्रता को लक्ष्य मानते थे और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को मार्ग तो ये लोग संगठन सशक्तिकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता मानते थे और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को मार्ग। सामाजिक स्वतंत्रता गांधी के अतिरिक्त किसी का लक्ष्य नहीं था। पटेल नेहरू आदि सभी नेता राष्ट्रीय स्वतंत्रता को ही लक्ष्य मानते थे देश के सभी नेता गांधी विचारों के पूरी तरह विरूद्ध थे। वे दिल से गांधी की एक भी बात नहीं मानते थे। किसी भी नेता का जनता में कोई प्रभाव नहीं था इसलिए डरकर वे गांधी जी की हर बात मान जाते थे। किन्तु किसी भी आंदालन की सफलता के लिए

राजनेताओं को साथ लेना एक मजबूरी है और राजनेता ही हमेशा धोखा देते हैं। इस विषय में गांधी, जयप्रकाश तथा अन्ना हजारे उदाहरण हैं।

कश्मीर समस्याः—

(542) भारत और पाकिस्तान की प्रगति का बहुत बड़ा हिस्सा कश्मीर समस्या की बलि चढ़ जाता ह। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों ने गृह युद्ध के उद्देश्य से मुसलमानों और हिन्दुओं के दो अलग—अलग गुट खड़े करके उन्हें 'शय' देनी शुरू कर दी थी। जब गांधीजी के नेतृत्व में आम हिन्दू और मुसलमान स्वतंत्रता की लड़ाई में एकजुट था तब ये लोग हिन्दू और मुसलमानों में नफरत के बीज बो रहे थे। वीर सावरकार को छोड़कर इनमें से किसी की उल्लेखनीय भूमिका स्वतंत्रता संघर्ष में नहीं रही। स्वतंत्रता के अंतिम काल तक मुसलमानों का बड़ा हिस्सा अपने साम्प्रदायिक नेतृत्व के पीछे इकट्ठा हो गया परन्तु हिन्दू नहीं हुआ। अतः भारत स्वतंत्र हो गया। यदि हिन्दू भी इकट्ठा हो जाता तो भारत गृह युद्ध में फँस जाता और अंग्रेजों की चाल सफल हो जाती।

(543) भारत का बंटवारा दो भाईयों के बीच का बंटवारा नहीं था बल्कि एक संयुक्त परिवार से एक भाई का अलग हो जाना था।

(544) भारत के आम मुसलमानों से भारत या पाकिस्तान में से एक चुनने का जनमत संग्रह नहीं हुआ बल्कि राजाओं से पूछा गया कि वे भारत मे रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में अथवा स्वतंत्र। निजाम हैदराबाद और कश्मीर स्वतंत्र रियासतें थी। स्वतंत्रता के बाद तक कश्मीर के राजा हिन्दू और बहुमत मुसलमान था जबकि हैदराबाद इसका ठीक उल्टा। हैदराबाद पर भारत ने आक्रमण किया और कश्मीर पर पाकिस्तान ने। कश्मीरी मुस्लिम बहुमत हिन्दू राजा के साथ में था। अतः विलय के बाद भी जनमत संग्रह स्वीकार कर लिया गया। इसी समय साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी जिससे कश्मीर सहित भारत के मुसलमानों में शंका पैदा हो गई। कांग्रेस ने साम्प्रदायिक हिन्दुओं को दबाने के स्थान पर कट्टरवादी मुसलमानों को प्रोत्साहित करने की गलत नीति अपनाई। इससे हिन्दू मुसलमानों के बीच तो संतुलन बना परन्तु कट्टरवादी तत्वों के हौसले बढ़ते चले गए। कांग्रेस पार्टी निरंतर मुसलमानों को एक पक्षीय प्रश्रय देती रही और कट्टरवादी हिन्दुओं को प्रतिक्रिया जागृत करने का सुअवसर मिलता रहा। कश्मीर के भारत में विलय के बाद भारत ने कुछ शर्ते स्वीकार की थी। दूसरी ओर जनमत संग्रह की स्वीकृति के बाद हमारा पक्ष कश्मीर की जनता की इच्छा पर निर्भर था। ऐसे समय पर श्यामा प्रसाद मुखर्जी का शर्तो को समाप्त करने का आह्वान करते हुए कश्मीर में प्रवेश करना, गिरफ्तारी देना तथा शहीद हो जाना कितना उचित था, कितना प्रासंगिक और भारत की समस्याओं में कितना प्राथमिक, यह मैं आज तक नहीं समझ सका? मेरे विचार में तो कश्मीर समस्या का उलझाव श्री मुखर्जी की अनावश्यक जल्दबाजी से भी जुड़ा हो सकता है। कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान की राजनीतिक सत्ता के खेल का मैदान है जब चाहा तब खेल लिया और

जब चाहा तब शिमला में बैठकर आराम कर लिया। कश्मीर समस्या का समाधान करने में भारत और पाकिस्तान की सरकारों की रूचि नहीं है। दोनों देशों की जनता को चाहिए कि वह अपने–अपने देशों की सरकारों को कश्मीर समस्या का कोई हल निकालने के लिए मजबूर कर दे।

(545) अखंड भारत का नारा सिर्फ शब्द जाल है। यदि ऐसा होने की सम्भावना बनने लगे तो भाजपा सबसे अधिक विरोध करेगी क्योंकि भारत में मुसलमानों का वोट (मत) चौदह प्रतिशत से बढ़कर बीस प्रतिशत हो जाएगा। कश्मीर समस्या किसी भी रूप से भारत पाकिस्तान का विवाद नहीं है। यह समस्या पूरी तरह इस्लामिक विस्तारवाद से जुड़ी हुई है। न्याय–अन्याय की समीक्षा आलोचक या विरोधी तक सीमित होती है, शत्रु के लिए नहीं होती। इस्लामिक विस्तारवाद वर्तमान समय में विरोधी नहीं बल्कि शत्रुवत है। कश्मीर समस्या पर चर्चा करते समय न्याय की बात को किनारे करके यथार्थ स्थिति पर सोचना चाहिए। इस विषय में मैं प्रशान्त भूषण से सहमत नहीं हूँ। कश्मीर छोड़ने के बाद ऐसा ही कारण पंजाब में हो सकता है क्योंकि साम्प्रदायिक विस्तारवाद को सिर्फ कुचला ही जा सकता है, कभी भी संतुष्ट नहीं किया जा सकता। पण्डित नेहरू का मुसलमानों के प्रति विशेष झुकाव कश्मीर समस्या के उलझने का मुख्य कारण बना। पण्डित नेहरू ने पटेल की एकदम नहीं सुनी। कश्मीर के सम्बन्ध में नेहरू ने अम्बेडर की भी अवहेलना की। कांग्रेस पार्टी सत्तर वर्षों से पण्डित नेहरू की ही नीतियों पर चलती रही है। अब मोदी ने कश्मीर समस्या का समाधान किया है।

विदेश नीतिः–

(546) दुनिया में पश्चिम की व्यवस्था लोकतांत्रिक–पूंजीवादी, साम्यवाद की तानाशाही आर्थिक– सरकारीकरण तथा इस्लामिक व्यवस्था तानाशाही–धार्मिक मानी जाती है। भारत में लोकतांत्रिक–पूँजीवाद है। उसे अपनी विदेश नीति का झुकाव पश्चिम के साथ अपनाना चाहिए। पश्चिम का अर्थ अमेरिका नहीं है बल्कि लोकतान्त्रिक पूंजीवाद की दिशा में चलने वाले देश हैं। भारत की विदेश नीति उच्च राष्ट्रवाद पर टिकी हुई है। इसे अनावश्यक टकरावों से बचना चाहिए।

(547) पंजाब समस्या श्रीमती गांधी और श्रीलंका समस्या राजीव गांधी के अनावश्यक उलझाव का परिणाम थी। दोनों को इसी से हानि उठानी पड़ी।

(548) विदेश नीति राष्ट्रवाद के ऊपर विश्व व्यवस्था की ओर झुकी हुई होनी चाहिए। संविधान में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि संयुक्त राष्ट्रसंघ या विश्व मंच के निर्णय को सरकार आसानी से अस्वीकार न कर सके। विदेशों से मजबूत सुरक्षा हेतु भारत के अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से 15 कि.मी. का भारतीय क्षेत्र ''सैनिक क्षेत्र'' घोषित होना

चाहिए। यहाँ या तो कोई निवास नहीं करेगा या करेगा तो सैनिक सत्ता की शर्तो के आधार पर। इस क्षेत्र में रहने वालों को मूल अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

शरणार्थीः—

(549) जो व्यक्ति अत्याचार से बचने के लिए भारत आता है वह शरणार्थी और जो सुविधा के लिए आता है वह घुसपैठिया। जो सरकार की अनुमति से आता है वह शरणार्थी और जो छिपकर आता है वह घुसपैठिया। पाकिस्तान, बंगलादेश, अफगानिस्तान से आने वाला हिन्दू शरणार्थी आर मुसलमान घुसपैठिया है। भारत सरकार ने जो कानून बनाया है वह अधूरा है। घुसपैठियों की पहचान होनी ही चाहिए। पहचान पूरी करने के बाद निर्णय करें कि क्या करना है। मुस्लिम मतों पर निर्भर राजनैतिक दल नहीं चाहते कि भारत में हिन्दू बढ़ें और मुसलमान घटें। इसलिए मुस्लिम मतों पर निर्भर राजनैतिक दल शरणार्थी घुसपैठिया की परिभाषा को उलझाकर रखना चाहते हैं।

नौकरशाहीः—

(550) भारत में नौकरशाही बदनाम तो है किन्तु गलत नहीं। सरकारी कर्मचारी राजनेताओं के गुलाम सरीखा कार्य करने के लिए मजबूर हैं। सरकारी कर्मचारी तंत्र के भाग नहीं होते बल्कि नौकर होते हैं क्योंकि उन्हें कार्यपालिका का संवैधानिक पार्ट नहीं माना जाता। नौकरशाही की तुलना में विधायिका के लोग अधिक भ्रष्ट और अपराधी होते हैं क्योंकि नेता जो भी भ्रष्टाचार करते हैं वह कर्मचारियों के ही माध्यम से होता है। कर्मचारियों को नेताओं के लिए भी भ्रष्टाचार करना होता है और अपने लिए भी। कोई भी राजनेता, नेता की तुलना में कर्मचारी नहीं बनना चाहता किन्तु कर्मचारी नौकरी छोड़कर भी नेता बनना चाहता है। भारत की नौकरशाही हमेशा ही अपनी संगठन शक्ति के बल पर सरकार को ब्लैकमेल करती है। उसका मानना है कि राजनीति से जुड़े लोग नौकरशाही की सहायता से ही देश को लूटने में सफल हो रहे हैं इसलिए लूट के माल में उनका हिस्सा स्वाभाविक है।

आधार कार्डः—

(551) भारत के प्रत्येक व्यक्ति की पहचान के लिए आधार कार्ड होना उचित है। आधार कार्ड सुरक्षा की दृष्टि से भी उचित है और सुविधाओं के लिए भी। प्रत्येक परिवार का भी एक निश्चित कोड नम्बर होना चाहिए जो नौ अंको का हो। पहले दो अंक लोक प्रदेश, दूसरे दो अंक लोक जिले, तीसरे दो अंक स्थानीय इकाई तथा अन्तिम तीन अंक उसके निवास के हों। उसी अंक के आधार पर परिवार का बैंक एकाउन्ट, गाड़ी नम्बर, मोबाइल नम्बर, कोर्ट केश आदि के नम्बर हों। नौ अंका के साथ दो अंक जोड़कर आधार बना सकते हैं।

मीडियाः—

(552) मीडिया पूरी तरह स्वतंत्र व्यापार है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहना गलत है। जबसे मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मानकर उन्हें विशेष अधिकार दिए गए तब से मीडिया में भ्रष्टाचार और ब्लैक मेलिंग भी बढ़ती गई। मीडिया में संगठन के भी दुर्गुण आए और मीडिया ने माना कि जब लोकतंत्र के तीन स्तंभ समाज को गुलाम बनाने में और लूटने मे लगातार सक्रिय हैं तो चौथा स्तंभ ही पीछे क्यों रहे? आदर्श लोकतंत्र में मीडिया को भी पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए। मीडिया सहित किसी भी व्यापार की स्वतंत्रता में राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

(553) सोशल मीडिया बहुत उपयोगी माध्यम है। सोशल मीडिया का तेजी से विस्तार होना चाहिए। सोशल मीडिया में जानबूझकर अपमान जनक अपराध प्रेरक या असत्य लेखन अपराध होना चाहिए किन्तु सरकार का कोई अन्य हस्तक्षेप उचित नहीं है।

जेएनयूः—

(554) पंडित नेहरू के वामपंथी—साम्प्रदायिक चिंतन को भारत की सामाजिक व्यवस्था तक पहुँचाने के उद्देश्य से जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी बनी जिसे वर्तमान में जेएनयू कहते हैं। भारत की अन्य शिक्षण संस्थाओं की तुलना में जेएनयू को कई गुना अधिक सुविधाएं भी दी गई और महत्व भी; जिससे योग्यता में जेएनयू सर्वोच्च हो तथा उच्च पदों पर भी ऐसे ही लोगों का वर्चस्व हो।

(555) राजनीति, न्यायपालिका तथा सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर जेएनयू प्रशिक्षित लोगों का ही वर्चस्व रहा। भाजपा सरकार आने के बाद इस वर्चस्व को पहली बार चुनौती मिली। अब विधायिका में तो ऐसे लोगों का वर्चस्व समाप्त हो गया है किंतु न्यायपालिका तथा कार्यपालिका में अभी आंशिक रूप से ऐसे अनेक लोगों का हस्तक्षेप है यद्यपि इनकी संख्या और हस्तक्षेप लगातार घट रहा है।

(556) भारत में कांग्रेस के शासन तक जेएनयू की विचारधारा एक संस्कृति के समान काम कर रही थी किंतु अब वह एक बदनाम संस्था तक सीमित हो गई है। अगले कुछ वर्षों में जेएनयू संस्कृति एक कलंकित इतिहास तक ही रह जाएगी।

वर्ग संघर्षः—

(560) समाज को लोकतांत्रिक तरीके से गुलाम बनाए रखने के लिए हर शासन वर्ग—संघर्ष का सहारा लेता है क्योंकि सामाजिक एकजुटता कभी भी शासक को मैनेजर बना सकती है। अन्य सभी सरकारें अप्रत्यक्ष रूप से वर्ग संघर्ष को बढ़ाती हैं तो साम्यवादी प्रत्यक्ष तौर पर। वर्तमान भारत में वर्ग संघर्ष बढ़ाने के आठ आधार हैं:— (1) धर्म (2) जाति (3) भाषा (4) क्षेत्रीयता (5) उम्र (6) लिंग (7) गरीब—अमीर (8) उत्पादक—उपभोगता। स्वतंत्रता के बाद सभी राजनैतिक दल पूरी सक्रियता से सभी

आठ आधारों का उपयोग करते हैं। इन आधारों में से छः आधार समाज को तोड़ने के लिए उपयोग किए जाते हैं तो दो उम्र और लिंग भेद परिवार व्यवस्था को ताड़ने के उद्देश्य से। 'फूट डालो और राज करो' की नीति को सफलता पूर्वक तथा लोकतांत्रिक तरीके से संचालित करने का एकमात्र आधार 'वर्ग निर्माण' होता है ।

(561) प्रवृत्ति वर्ग निर्माण का एकमात्र आधार होती है। प्रवृत्ति के आधार पर दो ही वर्ग बनाए जा सकते हैंः– (1) अपराधी (2) निरपराध। प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर वर्ग बनते हैं और वर्ग को विशेष अधिकार दिए जाते हैं तो उस वर्ग के धूर्त लोग उस विशेष अधिकार का लाभ उठाकर मजबूत होते हैं तथा दूसरे वर्ग के शरीफ लोगों का शोषण करते हैं। सम्पूर्ण दुनिया में धूर्तता के मजबूत होने का यह मुख्य कारण है। इसलिए गांधी वर्ग समन्वय चाहते थे और सभी नेता वर्ग संघर्ष के पक्षधर थे। कमजोरों को उनके अधिकार के विषय में बताना वर्ग संघर्ष का विस्तार करता है और मजबूतों को कर्तव्य के लिए प्रेरित करना वर्ग समन्वय का।

(562) वर्ग विभाजन एक सामान्य प्रक्रिया है। धीरे–धीरे वर्ग निर्माण भी हो जाता है। चालाक लोग इस सामान्य प्रक्रिया का लाभ उठाकर वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष की दिशा में ले जाते हैं। इसलिए वर्ग निर्माण से ही सतर्क रहकर विरोध करना चाहिए क्योंकि वर्ग निर्माण के बाद वर्ग विद्वेष का विस्तार बहुत आसान हो जाता है और वर्ग समन्वय बहुत कठिन। प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी भी अन्य आधार पर वर्ग बनते हैं तो अपराधियों के लिए ये वर्ग शरणस्थली का काम करते हैं। इसलिए राजनेता तथा अपराधी हमेशा वर्ग निर्माण का प्रयत्न या समर्थन करते हैं।

(563) किसी भी व्यक्ति के अधिकार समान होते हैं। सुविधा अलग से दी जा सकती है किन्तु किसी को अधिकार अतिरिक्त नहीं दिए जा सकते। विशेष अधिकार की मांग और व्यवस्था गलत है। दुनिया में कोई ऐसा वर्ग नहीं है जिसके सभी लोग अच्छे हों या सभी बुरे। इसलिए किसी वर्ग को विशेष अधिकार नहीं दिए जा सकते हैं।

आरक्षणः–

(564) किसी भी प्रकार का आरक्षण घातक होता है चाहे वह धर्म, जाति, महिला, गरीब, अपंग अथवा किसी भी अन्य आधार पर क्यों न हो? किसी भी प्रकार का आरक्षण, 'श्रम–शोषण' का सिद्धांत होता है। सब प्रकार के बुद्धिजीवी श्रम–शोषण के उद्देश्य से आरक्षण को हथियार के रूप में उपयोग करते हैं। स्वतंत्रता पूर्व के कालखण्ड में जन्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था बनाकर इस सामाजिक आरक्षण का उपयोग किया गया तो स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक आरक्षण लागू करके। किसी भी प्रकार का आरक्षण समाप्त होना चाहिए।

अल्पसंख्यकः–

(570) अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक की धारणा घातक है। समाज का धर्म के आधार पर विभाजन नहीं होना चाहिए था जो कि हुआ।

हरिजन–आदिवासीः–

(571) गांधी सवर्ण–अवर्ण का भेद मिटाना चाहते थे तो अम्बेडकर इस भेदभाव से लाभ उठाना चाहते थे। आदिवासी–गैर आदिवासी शब्द भी अंग्रेजों का बनाया हुआ है। अम्बेडकर ने आदिवासी शब्द को भी मजबूत किया। ये दोनों शब्द श्रमशोषण के उद्देश्य से प्रयोग किए जाते हैं। धूर्त लोग इन शब्दों का अधिक उपयोग करके स्वयं लाभ उठाते हैं।

क्षेत्रीयताः–

(572) क्षेत्रीयता का उपयोग वर्ग संघर्ष के लिए होता है। सभी राजनैतिक दल क्षेत्रीयता का उपयोग करते हैं। क्षेत्रीय भावनाओं को भड़का कर सत्ता प्राप्त करने की कोशिश बढ़ती जा रही है। दक्षिण भारत के लोग उत्तर–दक्षिण के नाम पर यह टकराव बढ़ाते हैं। बिहार और महाराष्ट्र क्षेत्रीयता का लाभ उठाने में सबसे आगे रहते हैं।

सिख दंगेः–

(573) सिख भी धर्म न होकर संगठन का स्वरूप है। सिखों में भी कुछ लोग मुसलमानों की तरह साम्प्रदायिक भाव विकसित करके उसका लाभ उठाना चाहते हैं। ये लोग मरने मारने से नहीं डरते तथा कभी संतुष्ट नहीं होते। स्वयं को समाज से ऊपर मानते हैं।

(574) इन्दिरा गांधी ने अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए सिख साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित किया। जब यह साम्प्रदायिकता खतरनाक हुई तब इन्दिरा जी को मजबूर होकर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। कुछ सिखों ने अपने स्वभाव के अनुकूल बदला लिया और इन्दिरा की हत्या कर दी। सिखों की साम्प्रदायिकता से परेशान भारत के लोगों ने सिखों पर निर्मम अत्याचार किए। कौन गलत और कौन सही यह कहना कठिन है किन्तु सिखों को भी अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

(575) भाषा के आधार पर प्रान्त रचना करना गलत था। भाषा के आधार पर प्रशासनिक इकाइयां बनाने के कारण भाषा विवाद भी बढ़े और क्षेत्रीयता भी बढ़ी।

(576) न कोई परिवार सिर्फ उत्पादक होता है, न सिर्फ उपभोक्ता। अधिकांश परिवारों की दोनों भूमिकाएँ होती हैं। शासन या उसके लोग इन्हें दो वर्ग मानकर कभी उत्पादक के पक्ष में आवाज लगाते हैं तो कभी उपभोक्ता के पक्ष में।

भारत की प्रमुख समस्याएँ और राजनीति के दस नाटकः–

(580) भारत में कुल ग्यारह प्रमुख समस्याएँ मानी जाती हैंः– (1) चोरी, डकैती, लूट (2) बलात्कार (3) मिलावट कमतौल (4) जालसाजी धोखा (5) हिंसा, बलप्रयोग, आतंक (6) चरित्र पतन (7) भ्रष्टाचार (8) साम्प्रदायिकता (9) जातीय कटुता (10) आर्थिक

असमानता (11) श्रम–शोषण। ग्यारह समस्याओं में से प्रथम पांच प्राकृतिक समस्याएं हैं तो अन्य छः कृत्रिम। ग्यारह समस्याओं में से प्रत्येक समस्या व्यापक रूप से घातक हैं। प्राथमिकता का क्रम बनाना संभव नहीं है। सभी ग्यारह समस्याएँ स्वतंत्रता के बाद लगातार बढ़ रही हैं या बढ़ाई जा रही हैं।

(581) दुनिया के सभी लोकतांत्रिक राजनेता सामाजिक एकता से भयभीत रहने के कारण फूट डालने को प्रमुख आधार मानते हैं। भारत भी एक लोकतांत्रिक देश होनें के कारण इसी नीति पर चलता है। लोकतांत्रिक तरीके से यह उद्देश्य पूरा करने के लिए हर राजनेता दस प्रकार के नाटकों का सहारा लेता हैः– (1) समाज को कभी एक जूट न होनें देना। समाज में आठ आधारों पर वर्ग निर्माण तथा वर्ग विद्वेष फैलाकर वर्ग संघर्ष की स्थिति निर्मित करना। ये आठ आधार हैंः– धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति और उत्पादक–उपभोक्ता। (2) समाज शब्द को कमजोर करके राष्ट्र शब्द और राष्ट्र भाव को मजबूत करना। (3) समाज में वैचारिक बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों पर बहस जारी रखना। (4) अधिक से अधिक कानून बनाना जिससे आम नागरिक अपराध भाव से ग्रसित रहें। (5) आम नागरिकों को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ कहकर उनमें हीन भाव भरना। (6) किसी समस्या का समाधान विपरीत तरीके से करनाः– (क) आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करना। (ख) सामाजिक और प्रशासनिक समस्याओं का आर्थिक समाधान करना। (ग) प्रशासनिक और आर्थिक समस्याओं का सामाजिक समाधान करना। (7) समस्याओं का ऐसा समाधान करना कि उस समाधान से ही किसी नई समस्या का जन्म हो। (8) बिल्लियों के बीच बन्दर की ऐसी भूमिका बनाना कि (क) बिल्लियों कि रोटी कभी बराबर न हो, (ख) बन्दर हमेशा रोटियों को बराबर करता हुआ दिखे, किन्तु करें नहीं। (ग) छोटी रोटी वाली बिल्ली के मन में असंतोष की ज्वाला जलती रहे। (9) आर्थिक असमानता प्रजातांत्रिक तरीके से बढ़ती रहे इसके लिएः– (क) जो वस्तु गरीब लोग अधिक और अमीर लोग कम मात्रा में प्रयोग करें उन पर अप्रत्यक्ष कर लगाना और प्रत्यक्ष सब्सीडी देना। (ख) जो वस्तु अमीर लोग अधिक और गरीब लोग कम मात्रा में प्रयोग करें उन पर प्रत्यक्ष कर लगाना और अप्रत्यक्ष सब्सीडी देना। (10) विपरीत प्राथमिकताएँ निर्धारित करना, वास्तविक समस्याओं को अंतिम तथा प्राथमिक और अस्तित्वहीन समस्याओं के समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।

(582) भारत में इस समय असंख्य नियम और कानून हैं। कानूनों के ढेर में आवश्यक कानूनों का भी महत्व समाप्त हो गया है।

नेहरूः–

(590) गांधी की एकमात्र प्राथमिकता थी स्वराज्य। नेहरू, पटेल आदि की प्राथमिकता थी राष्ट्रीय स्वतंत्रता, अम्बेडकर और जिन्ना की प्राथमिकता थी सत्ता।

(591) स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल अधिकांश राजनेता गांधी की नीतियां से सहमत नहीं थे। सुभाष बाबू, भगत सिंह आदि गांधी की नीतियों का खुलकर विरोध करते थे किन्तु गांधी का पूरा सम्मान करते थे। नेहरू, पटेल आदि गांधी जी की नीतियों से सहमत नहीं थे किन्तु सम्मान और भय के कारण समर्थन करते थे। अम्बेडकर विरोध करते थे किन्तु भय के कारण दब जाते थे।

(592) नेहरू, पटेल की तुलना करें तो पटेल, नेहरू की अपेक्षा अधिक त्यागी थे और नेहरू, पटेल की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक। पटेल में राष्ट्रवाद अधिक था तथा विश्व सामंजस्य कम जो नेहरू में अधिक था। पटेल सीमित मताधिकार के पक्षधर थे और नेहरू बालिग मताधिकार के। पंडित नेहरू में सत्ता की भूख इतनी ज्यादा थी कि भारत विभाजन तक के लिए पटेल के साथ सहमत हो गए। इन दोनों ने गांधी तक की अनदेखी की। पंडित नेहरू ने जयप्रकाश जी तथा लोहिया जी को भी लगातार अनदेखी किनारे करने की कोशिश की।

(593) नाथूराम गोडसे वैचारिक धरातल पर बिल्कुल मूर्ख और अंधा था। वह पूरी तरह देशभक्त था, पंडित नेहरू से भी अधिक किन्तु वह जिस विचारधारा से प्रेरित था वह विचारधारा गलत थी। यदि गोडसे उस गलत विचारधारा से हटकर गांधी विचारों से जुड़ा होता तो समाज के लिए बहुत लाभदायक होता क्योंकि गांधी मोटीवेटर थे और गोडसे मोटिवेटेड। गोडसे का कार्य पूरी तरह हिन्दुत्व के भी विपरीत था और राष्ट्र के भी। गांधी हत्या का किसी भी रूप से कोई औचित्य नहीं था। गोडसे का कार्य लंबे समय तक कलंकित माना जाएगा। गांधी हत्या का देश विभाजन अथवा पच्चपन करोड़ से भी कोई सम्बन्ध नहीं था क्योंकि गांधी हत्या के प्रयत्न देश विभाजन से तो कई वर्ष पूर्व ही शुरू हो गए थे।

(594) वीर सावरकर का पूर्वाद्ध जीवन यात्रा गांधी की तुलना में अधिक संघर्ष का रहा था। मैंने अंडमान की सेल्यूलर जेल को देखकर कष्टों का अनुभव भी किया। जेल में समझौते के बाद सावरकर पर संदेह है कि उन्होंने पूरी ईमानदारी से अंग्रेजों का काम किया। अंग्रेज तीन काम चाहते थेः– (1) भारत में हिंदू–मुस्लिम का अलग–अलग ध्रुवीकरण। (2) असहयोग आंदोलन का विरोध। (3) गांधी से मुक्ति। इन तीनों दिशाओं में सावरकर की सक्रियता उनकी जेल यात्रा के बाद की देशभक्ति पर संदेह खड़े करती हैं।

(595) पूरे स्वतंत्रता संग्राम से लेकर स्वतंत्रता के बाद तक भीमराव अम्बेडकर की भूमिका खलनायक की रही है। स्वतंत्रता संग्राम में भी उनकी भूमिका कमजोर थी और स्वतंत्रता के बाद भी वे हमेशा सत्ता की तिकड़म करते रहे।

(596) गांधी के बाद समाजशास्त्र तथा लोकतंत्र की सबसे अच्छी समझ जयप्रकाश जी को थी। जयप्रकाश जी सत्ता की राजनीति से दूर रहकर राजनीति पर सामाजिक नियंत्रण के पक्षधर थे। विनोबा जी राजनीति से दूर रहकर समाज सुधार चाहत थे और राममनोहर लोहिया सत्ता की राजनीति में रहकर राजनीति का शुद्धिकरण चाहते

थे। जयप्रकाश जी की लाइन अन्य सबकी तुलना में गांधीवाद के अधिक नजदीक थी। विनोबा जी ने न कभी जयप्रकाश की लाइन का समर्थन किया न जयप्रकाश का। जब जयप्रकाश जी ने अलग लाइन ली तो विनोबा जी ने खुला विरोध किया। जयप्रकाश जी के बाद गांधी को सबसे अधिक समझने वाले व्यक्ति ठाकुरदास बंग हुए। बंग जी को सिद्धराज जी का समर्थन मिला किंतु साम्यवादी मुस्लिम गठजोड़ प्रभावित टीम ने बंग जी की लाइन का खुला विरोध किया। इस विरोध का नेतृत्व कुमार प्रशांत ने किया। बंग जी के बाद आंशिक रूप से अन्ना हजारे ने गांधी की लाइन पकड़ी किन्तु अन्ना के पास ऐसी कोई टीम नहीं थी जैसी जयप्रकाश जी या बंग जी की थी। अन्ना जी जल्दी ही राजनेताओं के पीछे चलने को मजबूर हो गए।

(597) बिना राजनेताओं को साथ लिए कोई भी बदलाव सम्भव नहीं है और राजनेताओं को साथ लेकर किए जाने वाले प्रयत्न के परिणाम में हमेशा राजनेता ही धोखा देते हैं। यही धोखा गांधी के साथ हुआ, यही जयप्रकाश के साथ हुआ और यही अन्ना हजारे के साथ हुआ। मेरा व्यक्तिगत अनुभव भी इसी निष्कर्ष से मेल खाता है।

लोहियाः–

(598) गांधी सत्ता और सम्पत्ति के अकेन्द्रीयकरण के पक्षधर थे। गांधी के अनुसार सत्ता और सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकतम निर्णय का अधिकार ग्राम सभा को रहे और इसमें सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम हो। जयप्रकाश भी इसके पक्षधर थे। लोहिया जी सत्ता के सम्बन्ध में गांधी विचार के साथ थे और आर्थिक मामलों में समाजवादी विचारों के साथ। अटल जी में अच्छे राजनेता के सभी गुण थे। सिद्धांतों के मामले में मोरारजी देसाई, अटल जी से भी ज्यादा मजबूत थे। अटल जी व्यावहारिक अधिक थे। अटल जी की नीतियों को संघ ने कभी पसंद नहीं किया। इसलिए अटल सरकार नहीं चल सकी।

नरेंद्र मोदीः–

(599) नरेंद्र मोदी में अटल जी की तुलना में कूटनीतिक समझ अधिक है। अटल जी राजनीतिक बुराइयों में सुधार के पक्षधर थे तो मोदी राजनीति में बदलाव चाहते हैं। अटल जी शांतिप्रिय थे तो मोदी आक्रामक। संघ परिवार के लिए नरेंद्र मोदी एक मजबूरी हैं। यदि मुसलमान बुद्धि का प्रयोग करने लगें तो संघ कभी भी मोदी से किनारा कर सकता है। यदि राहुल गांधी नरम हिंदुत्व के साथ संघ से सम्बन्ध सुधार ले तब भी संघ मोदी से दूर हट सकता है। वर्तमान राजनैतिक वातावरण में मोदी का कोई विकल्प नहीं है।

भाग 6 धार्मिक

अहिंसाः—

(600) शक्ति प्रयोग और अहिंसा के प्रयोग का परिस्थिति के अनुसार निर्णय करना चाहिए न कि सिद्धांत के अनुसार। हिन्दू धर्म में व्याप्त एक पक्षीय हिंसा ने बुद्ध और जैन को पैदा किया तथा बुद्ध और जैन की एक पक्षीय अहिंसा ने भारत को गुलामी की ओर धकेल दिया। इसी तरह यहूदियों की एक पक्षीय हिंसा से ईसाइयत का उदय हुआ और ईसाईयों की एक पक्षीय अहिंसा से इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ। इस्लाम की एक पक्षीय हिंसा के परिणाम शीघ्र ही आने की सम्भावना है।

(601) गांधीजी की अहिंसा परिस्थितियों के कारण सफल हुई न कि सिद्धान्त से। यदि ब्रिटिश शासन के स्थान पर मुस्लिम या साम्यवादी देशों की गुलामी होती तो गांधीजी की अहिंसा सफल नहीं होती। हिंसा का मार्ग अंतिम विकल्प है न कि प्रथम। स्वतंत्रता संघर्ष में गांधीजी का निर्णय उचित था और हिंसा के पक्षधरों का गलत। गांधी जी अहिंसा को कायरता के विरूद्ध शस्त्र के समान उपयोग करते थे किन्तु वर्तमान में अहिंसा के पक्षधर अपनी कायरता को ढकने के लिए अहिंसा को ढाल के रूप में उपयोग करते हैं।

(602) वर्तमान समय में किसी भी नागरिक द्वारा किसी भी परिस्थिति में हिंसा का समर्थन अथवा इस का प्रयोग गलत है।

सम्प्रदाय और धर्मः—

(603) धर्म की अनेक परिभाषाएं हैं। मेरी मान्यता है कि किसी अन्य के हित में किया गया निःस्वार्थ कार्य धर्म होता है। धर्म का सम्बन्ध कर्तव्य तक सीमित है। समाज का उचित मार्गदर्शन करने वाली प्रणाली भी धर्म कही जाती है। धर्म व्यक्तिगत होता है, सामूहिक नहीं। धर्म का उपासना से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म के दस लक्षणों में भी ईश्वर या पूजा शामिल नहीं है। किसी उपासना पद्धति के आधार पर बने संगठन को सम्प्रदाय कहते ह। हिन्दू विचार और तर्क से बढ़ा है, ईसाई प्रेम और सेवा से तथा इस्लाम संगठन शक्ति से। कुछ कट्टरवादी हिन्दू संगठनों को यदि अलग कर दें तो हिन्दू मूल रूप से कट्टर नहीं होता, ईसाइयत में कैथोलिकों का वर्तमान स्वरूप कुछ कट्टरवाद की तरफ झुका हुआ है। दुनिया में मुसलमान धार्मिक मामलों में सर्वाधिक असहिष्णु और कट्टर होता है।

(604) धर्म गुण प्रधान जीवन पद्धति हैं तो सम्प्रदाय संख्या विस्तार प्रधान संगठन होता है, साम्प्रदायिक संगठन एक दूसरे के पूरक होते हैं। हिन्दू साम्प्रदायिकता मुस्लिम साम्प्रदायिकता को तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता हिन्दू साम्प्रदायिकता को बढ़ाती है।

(605) भारत में धर्म निरपेक्ष व्यक्तियों की विश्वसनीयता संदिग्ध रही है। अधिकांश धर्म निरपेक्ष, व्यक्तियों तथा संगठनों ने हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोध किया किन्तु मुस्लिम साम्प्रदायिकता का समर्थन किया या मौन रहे। आज असम या बंगाल में मुस्लिम आबादी बढ़ाने का षड़यंत्र एक नए विभाजन की स्थिति का भय पैदा करता है। धर्म निरपेक्ष लोग इसके प्रति मौन रहते हैं।

(606) अल्पसंख्यक–बहुसंख्यक का विचार मूल रूप में घातक है। वास्तव में शरीफ लोगों के समक्ष अल्पसंख्यक होने का खतरा उपस्थित हो गया है।

(607) साम्प्रदायिक हिन्दू और साम्प्रदायिक मुसलमान दो विपरीत ध्रुवों पर खड़े होकर एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं। बीच में शान्ति प्रिय लोग रहते हैं जो इनके आक्रमण में मारे जाते हैं। किसी भी साम्प्रदायिक दंगे में न कट्टरवादी हिन्दू मरता है और न ही कट्टरवादी मुसलमान। सारा नुकसान शान्ति प्रिय लोगों का ही होता है।

(608) धर्म संकट में हैं धर्म की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य हैं। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, सिक्ख सभी धर्म प्रेमियों को एकजुट होकर अधर्म के विरूद्ध संघर्ष शुरू कर देना चाहिए।

(609) धर्म की व्यवस्थाएँ कुछ लोगों के जीवनयापन के साथ जुड़ गई हैं। अतः धर्म की अपने अनुकूल व्याख्या करना उनकी मजबूरी भी है।

(610) रूढ़िवादिता हमारे स्वतंत्र चिन्तन को एक पक्षीय प्रभावित करती है। चाहे वह रूढ़िवाद धार्मिक हो या राजनीतिक। जब समाज पर समाज विराधी तत्वों का खतरा मंडरा रहा हो, तब मंदिर, मस्जिद, आरक्षण अथवा राष्ट्र भाषा जैसे मुद्दे उठाना प्राथमिकता की दृष्टि से गलत कार्य है।

(611) बनारस के मंदिर को देखकर यह आभास होता है कि मुसलमानों ने अनेक मंदिरों को तोड़कर मस्जिदें बनवाई होंगी।

(612) धर्म और राजनीति एक दूसरे के पूरक होते हैं। धर्म हृदय परिवर्तन का कार्य करता है और राजनीति व्यक्ति की उच्छृंखलता पर अंकुश लगाती है।

(613) आध्यात्म, धर्म, समाज और राज्य के संतुलित समन्वय से व्यवस्था बनती है। किसी एक का कमजोर या मजबूत होना अव्यवस्था को बढ़ाता है। (क) आध्यात्म व्यक्ति

को आत्म केन्द्रित तथा चिन्तन प्रधान बनाता है। (ख) धर्म दूसरों के प्रति कर्तव्य की प्रेरणा देता है। (ग) समाज अनुशासित करता है। (घ) राज्य शासित एवं नियंत्रित करता है।

(614) वर्तमान समय में राज्य ने समाज को निगल लिया है। राज्य निरंतर मजबूत और समाज निरंतर कमजोर हो रहा है। राज्य स्वयं को समाज घोषित करने लगा है।

(615) जब भी समाज पर ऐसा संकट आता है तब धर्म और आध्यात्म समाज की सहायता के लिए आगे आते हैं। रामायण काल में ऋषियों ने राम को शस्त्र भी दिए और शस्त्र चलाने की ट्रेनिंग भी। ऐसे समय में सत्य और धर्म की परिभाषा बदल जाया करती है। रामायण काल में बालि वध या मेघनाद यज्ञ विध्वंस में धर्म और कर्तव्य की परिभाषा बदल गई तो महाभारत काल में भी कई जगह सत्य को व्यावहारिक स्वरूप देना आवश्यक समझा गया। वर्तमान समय में भी आध्यात्म और धर्म को व्यावहारिक परिभाषाओं के साथ समाज की सुरक्षा में आगे आना चाहिए।

(616) दुनिया में जिस शब्द को अधिक प्रतिष्ठा मिलती है उस शब्द की नकल करके उसका वास्तविक अर्थ विकृत करने की परंपरा रही है। धर्म शब्द के साथ भी यही हुआ है।

(617) धर्म जीवन पद्धति है और सम्प्रदाय संख्या विस्तार। धर्म न्याय प्रधान होता है तो सम्प्रदाय अपनत्व प्रधान। धर्म का चरित्र संस्थात्मक होता है तो सम्प्रदाय का संगठनात्मक।

(618) धर्म कर्तव्य प्रधान होता है तो सम्प्रदाय अधिकार प्रधान, धर्म समाज व्यवस्था का सहयोगी होता है और सम्प्रदाय समाज का सहभागी।

(619) धर्म किसी विचार अथवा धर्मग्रन्थ को अतिंम सत्य नहीं मानता, इसमें देश काल परिस्थिति के अनुसार संशोधन सम्भव है। सम्प्रदाय में संशोधन सम्भव नहीं है।

(620) धर्म का न कोई प्रारम्भकर्ता होता है न कोई प्रारम्भिक समय। धर्म शास्वत ह। सम्प्रदाय किसी व्यक्ति अथवा किसी धर्म ग्रन्थ द्वारा किसी खास समय से शुरू होता है।

(621) धर्म, व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को मान्यता देता है, सम्प्रदाय ऐसी मान्यता नही देता। सम्प्रदाय व्यक्ति को अपनी संगठनात्मक सम्पत्ति मानता है।

(622) धर्म में अनुशासन अनिवार्य नही ह और विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है। सम्प्रदाय में अनुशासन अनिवार्य है लेकिन वैचारिक स्वतंत्रता अनिवार्य नहीं है।

(623) धर्म समाज को सर्वोच्च मानता है और राज्य का मार्ग दर्शन करता है। सम्प्रदाय संगठन को सर्वोच्च मानता है और राज्य पर नियंत्रण करता है।

(624) धर्म का मूल स्रोत दर्शन है तो सम्प्रदाय का संस्कृति। हिन्दु धर्म अधिकांश अवसरों पर आज भी दर्शन को महत्व देता है तो इस्लाम में दर्शन को महत्व देने वाले सूफी लगातार कमजोर किए जा रहे हैं। ईसाइयत में लगभग बीच की स्थिति है।

(625) धर्म में आस्था पर विज्ञान भारी होता है। परिस्थिति अनुसार आस्था में संशोधन संभव है। सम्प्रदाय में आस्था, विज्ञान पर भारी होती है और आस्था में संशोधन सम्भव नही होता है। धर्म और विज्ञान को एक दूसरे के निकट होना चाहिए। विज्ञान निष्कर्ष निकालता है और धर्म उस पर आचरण हेतु प्रेरणा देता है। धर्म और विज्ञान की बढ़ती दूरी ही रूढ़िवाद का आधार है, वर्तमान में यह दूरी बढ़ रही है।

(626) धर्म के नाम पर सम्प्रदायों ने पूरी दुनिया में जितनी हिंसा और अत्याचार किए हैं उतना अपराधियों ने भी नहीं किए।

(627) धार्मिक एकीकरण किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान नहीं है। भारत के सब लोग हिन्दू, मुसलमान या इसाई होकर किसी एक ही धर्म के हो जाए तब भी चोरी, डकैती, बलात्कार, आतंकवाद, मिलावट आदि में से किसी समस्या का कोई समाधान सम्भव नहीं है। धर्म संकट में हैं। धर्म की रक्षा करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। हिन्दू, मुसलमान, इसाई, सिक्ख सभी धर्म प्रेमियों को एकजुट होकर अधर्म के विरूद्ध संघर्ष शुरू कर देना चाहिए। यदि भगवान राम का पृथ्वी पर अवतरण हो जाए तो वे सर्वप्रथम आसुरी शक्तियों से संघर्ष शुरू कर देंगे चाहे ऐसे तत्व किसी भी धर्म (सम्प्रदाय) के हों।

(628) यह पूरी दुनिया के लिए आश्चर्य जनक विषय है कि भारत का बहुसंख्यक जन समुदाय तो समान नागरिक संहिता की बात करे और अल्पसंख्यक धर्म परिवर्तन की छूट की बात करे। पूरे विश्व में इसके विपरीत होता है।

(629) धार्मिक आधार पर चार सम्प्रदाय होते हैंः— (1) जो मान्यता में कट्टरवादी हैं तथा आचरण में भी कट्टरवादी हैं। (दूसरों के मूल अधिकारों का हनन करते हैं।) (2) जो मान्यता में शांतिप्रिय हैं और आचरण में कट्टरवादी। (3) जो मान्यता में कट्टरवादी हैं परन्तु आचरण में शांतिप्रिय। (4) जो मान्यता तथा आचरण दोनों में शान्तिप्रिय हैं। कट्टरवादी मुसलमान पहली श्रेणी में, कट्टरवादी हिन्दू दूसरी श्रेणी में, शांतिप्रिय मुसलमान तीसरी श्रेणी में और शांतिप्रिय हिन्दू चौथी श्रेणी में आते हैं। हमें पहली श्रेणी को तत्काल नष्ट कर देना चाहिए तथा दूसरी को भी नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए। तीसरी श्रेणी का हृदय परिवर्तन और चौथी श्रेणी का अनुकरण उपयुक्त मार्ग है। वर्तमान स्थितियों में पहली और दूसरी श्रेणी के विरूद्ध तीसरी और चौथी श्रेणी को एकजुट हो जाना चाहिए। कट्टरवादी हिन्दू और कट्टरवादी मुसलमान ऐसा ध्रुवीकरण पसन्द नहीं करेंगें।

हिन्दू आतंकवादः—

(630) लोकतांत्रिक व्यवस्था में उग्रवाद तथा आतंकवाद का कोई स्थान नहीं होता। यदि कोई हिन्दू उग्रवादी, आतंकवाद का समर्थन या अनुकरण करता है तो वह गलत है।

(631) पुनर्जन्म होता है या नहीं यह अब तक प्रमाणित नहीं है। हिन्दू पुनर्जन्म को मानता है और इस्लाम नहीं मानता। सामान्यतया हिन्दू शान्तिप्रिय होता है और मुसलमान उग्रवादी। यदि कोई हिन्दू उग्रवादी है तो संदेह होता है कि वह पिछले जन्म में मुसलमान रहा होगा। इसी तरह हो सकता है कि पिछले जन्म का हिन्दू वर्तमान में मुसलमान परिवार में जन्म लिया हो तो ऐसा मुसलमान शांतिप्रिय हो सकता है।

(632) कुछ हिन्दुओं पर आतंकवाद के आरोप लगे जो अब तक संदेह के घेरे में हैं। यदि वे आरोप गलत भी हों तब भी इन आरोपों के बाद हिन्दुओं में आतंकवाद की ओर झुकने की प्रवत्ति पर पूरी तरह रोक लग गई। हिन्दुओं के लिए यह अच्छा हुआ।

क्रिया–प्रतिक्रियाः–

(633) बाबरी मस्जिद गिराना गलत था किन्तु हुआ। गोधरा में मुसलमानों ने जो ट्रेन जलाई वह एक क्रिया थी, प्रतिक्रिया नहीं। ट्रेन की घटना के बाद जो दंगे हुए वह प्रतिक्रिया थी। गोधरा के समय नरेन्द्र मोदी की भूमिका बहुत ठीक थी। मुसलमानों की मूर्खता ने मोदी को अपनी दृढ़ता प्रमाणित करने का अवसर दिया जिसका लाभ उठाकर मोदी भारत के प्रधानमंत्री पद तक पहुँच गए।

(634) गोधरा ट्रेन जलाने की घटना को वामपंथी, कांग्रेस तथा लालू प्रसाद ने मिलकर दूसरी दिशा देने का भरपूर प्रयास किया। कुछ गांधीवादियों ने भी इनका साथ दिया किन्तु इन सबके सारे षड्यंत्र असफल हुए।

(635) बाबरी मस्जिद गिराने की अपेक्षा जो उसका न्यायिक निपटारा हुआ यही मार्ग ठीक था।

संख्या विस्तारः–

(641) हिन्दू, दुनिया का एकमात्र ऐसा मानव समूह है जो संख्या विस्तार को महत्व नहीं देता। सभी सम्प्रदाय संख्या विस्तार के प्रयत्न करते रहते हैं और हिन्दू विरोध करता है। हिन्दुओं की यह प्रवृत्ति हिन्दुओं क लिए घातक है किन्तु आज दुनिया में हिन्दू इस प्रवृत्ति के आधार पर चुनौती देता है कि दुनियां में वह अकेला धर्म है और शेष सभी सम्प्रदाय। यह प्रवृत्ति हिन्दुओं की मूर्खता तो हो सकती हैं किंतु धूर्तता नहीं।

(642) हिन्दू, ब्राह्मण संस्कृति प्रधान है, इस्लाम और सिख, क्षत्रिय संस्कृति प्रधान, ईसाई व यहूदी, वैश्य संस्कृति प्रधान, साम्यवादी, शूद्र संस्कृति प्रधान होते हैं। हिन्दू तर्क को

अधिक महत्व देता है, मुसलमान संगठन शक्ति को, ईसाई धन को, साम्यवादी वर्ग संघर्ष को। हिन्दू विचार मंथन, मुसलमान आपसी भाईचारा, ईसाई प्रेम, सेवा सद्भाव और साम्यवाद सत्ता को मुख्य आधार बनाता है।

(643) धर्म परिवर्तन प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता होनी चाहिए और धर्म परिवर्तन कराना अपराध।

(644) पंडित नेहरू और भीमराव अम्बेडकर ने पूरा प्रयत्न किया कि भारत में हिंदुओं की संख्या घटती जाए। दोनो ने मुसलमानों, ईसाइयों तथा साम्यवादियों को संख्या विस्तार के लिए बहुत सुविधाएं दी।

वेदः—

(645) हिन्दुओं के अनुसार वेद सत्य विद्याओं की पुस्तक है अंतिम सत्य नहीं। वेद मार्गदर्शक हैं।

मूर्ति पूजाः—

(646) मूर्ति आस्था का केन्द्र होती है, यथार्थ नहीं। मूर्ति पूजा का विरोध करना गलत है। मूर्ति पूजा को निरर्थक तो कहा जा सकता है किन्तु घातक या गलत कार्य नहीं।

(647) गाय, गंगा, मन्दिर, हिन्दुओं की आस्था के केन्द्र हैं। इनका राजनैतिक उपयोग ठीक नहीं। यदि हिन्दुत्व और हिन्दू रहेगा तो गाय, गंगा, मन्दिर का अस्तित्व सुरक्षित रहेगा। यदि हिन्दुत्व और हिन्दू ही कमजोर पड़ा तो गाय, गंगा, मन्दिर का अस्तित्व खतरे में है। गाय, गंगा, मन्दिर की अपेक्षा हिन्दू और हिन्दुत्व की चिन्ता करनी चाहिए।

धर्म गुरूः—

(651) जब समाज व्यवस्था वर्ण आश्रम व्यवस्था के अनुसार ठीक चल रही हो तो व्यक्ति को धर्म गुरूओं के बताए मार्ग पर चलना चाहिए और जब व्यवस्था विकृत हो जाए तब धर्म गुरूओं की बात बिल्कुल नहीं सुननी चाहिए। जब व्यवस्था ठीक हो तो व्यक्ति को हमेशा शरीफ होना चाहिए और जब विकृत हो तब शराफत छोड़कर समझदार होना चाहिए। वर्तमान समय में पूरी व्यवस्था विकृत है।

(652) विकृत व्यवस्था में मृत महापुरूषों के विचार बिना विचारे कभी अनुकरण नहीं करने चाहिए। सुनिए सबकी करिए मन की।

(653) वर्तमान समय में अधिकांश धर्म गुरू और राजनेता समाज को शराफत को ओर चलने की प्रेरणा देते हैं और स्वयं अधिक से अधिक चालाक बनना चाहते हैं। वह समाज को कर्तव्य, त्याग, दान का महत्व समझाते हैं तो स्वयं अधिकार और संग्रह का महत्व समझते हैं।

इस्लामः—

(660) इस्लाम दुनिया का सबसे अधिक खतरनाक संगठन है क्योंकि इस संगठन ने धर्म का नकाब भी लगा लिया है और स्वयं को सत्ता के साथ भी जोड़ लिया है।

(661) यदि किसी देश में मुसलमान दस प्रतिशत तक हों तो मानवता के व्यवहार की याचना करते हैं, बीस प्रतिशत हो जाए तो बराबरी के लिए संघर्ष करते हैं और तीस प्रतिशत हो जाए तो अत्याचार शुरू कर देते हैं। यदि संख्या कम हो तो इनका आचरण दारुल अमन का होता है। संख्या बीस प्रतिशत से ऊपर हो जाए तो ये दारुल हरब का लक्ष्य बनाते हैं और संख्या तीस प्रतिशत से ऊपर होते ही तो इनका लक्ष्य दारूल इस्लाम बन जाता है।

(662) मुसलमान भी दो प्रकार के हैं:— (1) धार्मिक (2) साम्प्रदायिक/संगठित। धार्मिक मुसलमान वह होते हैं जो तौहिद (एकेश्वरवाद), रोजा, हज, नमाज और जकात को प्राथमिकता मानकर अन्य रीति—रिवाजों को गौण मानते हैं। संगठित मुसलमान संख्या विस्तार, वेषभूषा, दाढ़ी, विवाह, तलाक आदि को धार्मिकता की तुलना में अधिक महत्व देते हैं। शुक्रवार की नमाज में भी धार्मिक मुसलमान नमाज को महत्व देता है तो संगठित मुसलमान मौलाना की तकरीर को।

(663) भारत में धार्मिक मुसलमानों की संख्या लगातार घट रही है। सूफी मुसलमान आमतौर पर धार्मिक होते हैं किंतु उनकी संख्या भी घट रही है। संघ परिवार किसी मुसलमान को धार्मिक नही मानता जो कि गलत है ।

(664) संगठन में शक्ति होती है। इस्लाम, धर्म के नाम पर एक संगठन है। संगठन शक्ति के बल पर इस्लाम ने चौदह सौ वर्षों में ही बहुत ज्यादा उन्नति कर ली। हिन्दुत्व विचारों के आधार पर आगे बढ़ता ह तो ईसाइयत प्रेम, सेवा, सद्भाव, लोभ, लालच के आधार पर। दोनों ही इस्लाम की संगठन शक्ति के समक्ष नहीं टिक सके। पिछले पांच—छः वर्षो में नरेंद्र मोदी के आने के बाद पूरी दुनियां इस्लाम से सतर्क हो रही है। चीन इस सतर्कता में सबसे सफल रहा है। चीन के प्रयत्न सबस अच्छे हैं। भारत भी ठीक दिशा में है।

(665) इस्लाम की संगठन शक्ति पूरी दुनिया के लिए चुनौती है। भारत को भी इसे समझना चाहिए किन्तु संघ परिवार इसमें बड़ी बाधा है। संघ परिवार समस्या के समाधान की अपेक्षा अपना लाभ उठाना चाहता है। संघ परिवार की कार्यप्रणाली पूरी तरह संगठनात्मक है धार्मिक नहीं। संघ पहले समान नागरिक संहिता की बात करता था तो अब हिंदू राष्ट्र की करने लगा।

(666) भारत में धर्मनिरपेक्षता का मुखौटा लगाकर अल्पसंख्यक तुष्टिकरण का घातक प्रयास हुआ। पैंसठ वर्ष तक हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा गया। अब मोदी सरकार समान नागरिक संहिता चाहती है तो संघ परिवार मुसलमानों को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखना चाहता है। मरता हुआ विपक्ष मुसलमानों को

ढाल बनाकर कुछ बचने के लिए प्रयत्नशील है। संघ परिवार को इस विपक्षी मुस्लिम एकता का लाभ मिल रहा है।

(667) कोरोना संकट में तबलीगियों के आचरण ने भारतीय मुसलमानों की पोल खोल कर रख दी। पहले हिन्दुओं के मन में मुसलमानों के विरूद्ध कुछ आक्रोश था घृणा नहीं। अब आक्रोश का स्थान घृणा ने ले लिया है। जो काम संघ परिवार सत्तर वर्षों में नही कर सका वह कार्य तबलीगियों की एक मूर्खता ने कर दिया। अब भारत के हर आदमी को पता चल गया कि भारतीय मुल्ला–मौलवी स्वयं संचालित नहीं हैं। ये मुल्ला–मौलवी विदेशी योजना से संचालित हैं। ये मुल्ला तो सिर्फ माध्यम हैं। वास्तव में तो भारत का मुसलमान विदेशी मुसलमानों की कठपुतली मात्र है।

(668) दुनिया में दो प्रवृत्तियां घातक हैंः– (1) बल (2) छल। साम्यवाद दुनिया की सबसे अधिक खतरनाक विचारधारा है जो छल को अधिक महत्व देती है और इस्लाम दुनिया का सर्वाधिक खतरनाक संगठन है जो बल को अधिक महत्व देता है। दुनिया में इस्लाम और साम्यवाद में कहीं एकता नहीं है किन्तु भारत में दोनो खतरनाक समूह एक साथ मिलकर काम करते हैं।

(669) भारत का अधिकांश मुसलमान स्वयं को शेर समझता है और दूसरों को गाय। उसके अन्दर यह भावना भरी हुई है कि वे भारत के शासक थे और अंग्रेजां ने मुसलमानों से भारत की सत्ता छीन ली थी। इसलिए सत्ता पर उनका पहला अधिकार बनता है। धीरे–धीरे दुनिया में जिस तरह का वातावरण बन रहा है उसमें मुसलमानों को या तो धर्म की दिशा में जाना होगा या समापन की प्रतीक्षा करें। इस टकराव की शुरूआत भारत से सम्भव है और इस टकराव के पहले संघ को धार्मिक या समाप्त करना आवश्यक है।

धर्म संस्कृतिः–

(671) जब कोई व्यक्ति बिना विचारे बार–बार किसी काम को करता है तो यह उसकी आदत मानी जाती है। यह आदत लंबे समय तक चलती रहे तो उस व्यक्ति का संस्कार बन जाती है। यह संस्कार उस समुदाय के अधिकांश लोगों का हो जाए तो यह उसकी संस्कृति बन जाती है।

(672) प्राचीन समय में दुनिया में दो संस्कृतियां मानी जाती थीं दैवी और आसुरी। दोनों की प्रवृत्ति तक विभाजित थी। बाद में दैवी संस्कृति में विभाजन हुआ इनमें से एक सनातन संस्कृति बनी और दूसरी यहूदी। सनातन संस्कृति में से बौद्ध, जैन, सिख बने तो यहूदी से ईसाई और मुसलमान। सनातन और यहूदी संस्कृति से निकलने वाली संस्कृतियों ने धर्म का स्वरूप विकृत किया और धर्म को संगठनात्मक स्वरूप दिया। इन सबने स्वयं को धर्म कहना शुरू कर दिया जिससे धर्म का अर्थ भी विकृत हुआ। धर्म में भी विभाजन हुआः–(1) गुण प्रधान (2) पहचान प्रधान। हिंदू आमतौर पर गुण प्रधान धर्म तक सीमित रहा। यहूदी भी गुण प्रधान धर्म को महत्व देते रहे। बौद्ध और

सिख पहचान प्रधान बन गए। ईसाई आंशिक रूप से गुण प्रधान रहे और मुसलमान पूरी तरह पहचान प्रधान बन गए। हिंदू संस्कृति को मानने वाला व्यक्ति गुण प्रधान धर्म के प्रति बहुत कट्टर होता है और पहचान प्रधान धर्म के प्रति सहिष्णु होता है। कालान्तर में सनातन संस्कृति को ही नाम बदलकर हिंदू कहा जाने लगा। हिंदू संस्कृति का मूल वर्णाश्रम व्यवस्था है। पूरी दुनियां में इतनी अच्छी व्यवस्था न कभी बनी न सोची गई।

आस्तिक–नास्तिक, ईश्वरः–

(681) जो लोग ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं वे आस्तिक और जो नहीं मानते वे नास्तिक कहे जाते हैं।

(682) ईश्वर है या नहीं यह अब तक प्रमाणित नहीं है। तर्क प्रधान लोग ईश्वर पर कम विश्वास करते हैं और आस्था प्रधान अधिक। तर्क प्रधान लोग ईश्वर के अस्तित्व को न मानते हुए भी सबको ईश्वर पर विश्वास कराते हैं क्योंकि समाज के सुचारू संचालन के लिए ईश्वर पर विश्वास आवश्यक है। ये धर्मगुरू दर्शनशास्त्र का अधिक अध्ययन करते हैं और उपनिषद तथा पुराणों के माध्यम से लोगों को ईश्वर पर विश्वास कराते हैं।

(683) ईश्वर का अस्तित्व है किन्तु यदि न भी हो तो समाज के सुव्यवस्थित संचालन के उद्देश्य से ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करना उचित है। ईश्वर है या नही इस बात पर तर्क नहीं करना चाहिए ।

बुद्धः–

(691) हिंदू संस्कृति धर्म का स्वरूप संस्थात्मक मानती है, संगठनात्मक नहीं। सबसे पहले बुद्ध ने हिंदुत्व को संगठन का स्वरूप दिया। इस विषय में मेरे विचार में बुद्ध गलत है। अहिंसा के विषय में बुद्ध की तुलना में महावीर अधिक स्पष्ट थे।

स्वामी दयानंदः–

(692) स्वामी दयानंद हिंदू धर्म के एक प्रमुख सुधारक के रूप में माने जाते हैं। स्वामी दयानंद ने लोक स्वराज्य पर भी स्पष्ट विचार दिया तथा वर्ण व्यवस्था के संशोधित स्वरूप पर भी। गांधी विचारों पर स्वामी दयानंद का अधिक प्रभाव था विवेकानंद का कम। संघ परिवार विवेकानंद जी से अधिक प्रभावित रहा है।

(693) आर्य समाज का इतिहास बहुत अच्छा रहा है। स्वतंत्रता संघर्ष में आर्य समाज ने खुलकर भाग लिया और स्वतंत्रता के बाद राजनीति से किनारे हो गया। संघ परिवार स्वतंत्रता संघर्ष तक तो सांस्कृतिक संगठन बना रहा और स्वतंत्रता के बाद सबसे बड़े राष्ट्र चिंतक के रूप में सामने आ गया।

भाग 7 सामाजिक

समाजः—

(700) समाज सर्वोच्च होता है। धर्म और राज्य सहायक। राज्य को सरकार माना जाता है तो समाज की एक व्यवस्था होती है। राज्य की सीमा देश होती है तो समाज की राष्ट्र। इस तरह सरकार या राज्य का सम्बन्ध देश से है राष्ट्र से नहीं।

(701) देश की एक सरकार होती है जो प्रत्येक मतदाता द्वारा सीधे चुनाव से बनती है। यह सरकार राष्ट्र द्वारा बनाए गए किसी संविधान के अनुसार कार्य करती है। सरकार या संसद संविधान का उल्लंघन या संशोधन नहीं कर सकती क्योंकि संविधान राष्ट्र के नागरिकों या उनकी किसी स्वतंत्र व्यवस्था द्वारा निर्मित है।

(702) सरकार का एकमात्र दायित्व होता है सुरक्षा और न्याय की स्थापना। अन्य सभी काम राष्ट्र सभा कर सकती है या आवश्यकतानुसार सरकार को दे सकती है।

(703) राष्ट्र सभा का गठन नीचे के क्रम से होना चाहिए। परिवार मिलकर गांव सभा, गांव; जिला सभा, जिला; प्रदेश सभा और प्रदेश मिलकर केन्द्र या राष्ट्र सभा का गठन करें। नीचे वाली सभा ऊपर वाली सभा को अधिकार दे या ले सकती हैं।

(704) यदि राष्ट्र सभा और सरकार के बीच कभी सहमति न बने तो जनमत संग्रह भी हो सकता है।

(705) यदि राष्ट्र सभा का कोई निर्णय व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के विरूद्ध हो तो न्यायपालिका ऐसे निर्णय को रद्द कर सकती है।

(706) किसी सामाजिक कुरीति के सम्बन्ध में राष्ट्र सभा ही हस्तक्षेप कर सकती है क्योंकि राष्ट्र सभा समाज का प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए इसमें सरकार को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

(707) हमें अपने सामाजिक कार्यों को तत्काल रोक कर उनकी नई समीक्षा इस तरह करनी चाहिए कि 1— भिन्न विचारों के लोगों के बीच संवाद, 2— स्वयं आंतरिक विचार मंथन, 3— अंतिम निष्कर्ष ,4— क्रिया। तीन प्रक्रियाएं पूरी करने के बाद ही सामाजिक कार्य में सक्रिय होना चाहिए।

आश्रम व्यवस्थाः—

(711) भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति की सम्भावित उम्र को चार भागों में बांटा जाता हैः– व्यक्तिगत, पारिवारिक, स्थानीय, सामाजिक। मार्गदर्शकों के लिए उम्र का चौथा चरण आवश्यक था तथा अन्य तीन तक रुक सकते थे। इस पद्धति से पीढ़ियों के बीच टकराव टल जाता था। सामाजिक व्यवस्था में भी सुविधा होती थी।

(712) मैं आज भी आश्रम व्यवस्था का पक्षधर हूँ। मैनें स्वयं वानप्रस्थ स्वीकार किया है। आश्रम व्यवस्था में वर्तमान समय में सुधार किया जा सकता है।

वर्ण व्यवस्थाः–

(713) प्रत्येक बालक की बचपन में ही योग्यता का आँकलन करके उसे एक दिशा में दीक्षित करने को वर्ण व्यवस्था कहा जाता है। यह आँकलन चार प्रकार का हाता हैः– (1) मार्गदर्शक (2) रक्षक (3) पालक (4) सेवक। प्राचीन समय में इन चारों का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के नाम से जाना जाता था।

(714) वर्तमान काल में वर्ण व्यवस्था विकृत हुई है और विभाजन योग्यता की जगह जन्म के आधार पर होने लगा। एक विकृति ने पूरी वर्ण व्यवस्था को ही बदनाम कर दिया जबकि वर्ण व्यवस्था आज भी आवश्यक और उचित है।

(715) योग्यता और गुणों के आधार पर ही चारों वर्णों के अलग–अलग दायित्व, कर्तव्य, अधिकार तथा सुविधाओं का निर्धारण होता था। प्रत्येक वर्ण की अपनी–अपनी सीमाएं भी निश्चित थी।

(716) वर्ण व्यवस्था के विकृत होने में सर्वाधिक भूल मार्गदर्शक अर्थात ब्राह्मण वर्ग की रही। इन्होंने धर्म की जगह संस्कृति को अधिक महत्व दिया, ज्ञान की जगह विद्वत्ता को महत्व दिया तथा विचार मंथन की जगह धर्म ग्रंथों और परम्पराओं को ही अंतिम आधार मान लिया।

(717) वर्ण आश्रम व्यवस्था दुनियां की अव्यवस्था दूर करने का सबसे आसान मार्ग है। वर्ण व्यवस्था दुनिया की सबसे अच्छी व्यवस्था है। भारत ने वर्ण व्यवस्था की जगह पश्चिम का लोकतंत्र अपनाकर भूल की है। भारत को इस दिशा में पहल करनी चाहिए।

(718) भारत को लोक स्वराज्य तथा वर्ण व्यवस्था के मिश्रित स्वरूप की दिशा में पहल करनी चाहिए।

कर्तव्य, अधिकार और दायित्वः–

(721) प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा करना समाज का दायित्व होता है। समाज इस कार्य का दायित्व जिसे देता है उसे राज्य कहते हैं। राज्य का सिर्फ एक ही दायित्व होता है सुरक्षा और न्याय। अन्य सभी कार्य राज्य के कर्तव्य होते हैं दायित्व नहीं। दायित्व बाध्यकारी होता है और कर्तव्य स्वैच्छिक। राज्य दायित्व और कर्तव्य का

अंतर न समझने के कारण जनहित को दायित्व मान लेता है तो सुरक्षा और न्याय को कर्तव्य।

(722) अधिकार और शक्ति अलग–अलग होते हैं। अधिकार को अंग्रेजी में राइट तथा शक्ति को पॉवर कहा जाता है। कोई व्यक्ति जब अपने अधिकार किसी अन्य को देता है तब वह अधिकार; शक्ति के रूप में बदल जाता है। ऐसी शक्ति हमेशा दाता की अमानत होती है प्राप्तकर्ता का अधिकार नहीं।

(723) किसी व्यक्ति के दायित्व किसी दूसरे के अधिकार बन जाते हैं। अधिकारों की पूर्ति तब तक संभव नहीं जब तक कोई दूसरा अपने दायित्व पूरे न करे। कमजोरों की मदद करना मजबूतों का कर्तव्य होता है कमजोरों का अधिकार नहीं क्योंकि यह मदद किसी का दायित्व नहीं है। राजनैतिक व्यवस्था ने इसे कमजोरों का अधिकार घोषित करके भूल की है।

(724) दायित्व पूरे करने के लिए व्यक्ति उत्तरदायी होता है, कर्तव्य के लिए नहीं। कर्तव्य के लिए प्रशंसा या धन्यवाद अथवा पुरस्कार ही पर्याप्त होता है।

परिवार और उसकी रचनाः–

(730) परिवार समाज व्यवस्था की पहली जीवंत इकाई है। परिवार स्वयं एक स्वतंत्र इकाई है, स्त्री–पुरूष का संघ नहीं जैसा कि पश्चिम की व्यवस्था मानती है। समाज में स्त्री और पुरूष एक दूसरे के पूरक होते हैं, विकल्प नहीं। समाज में स्त्री और पुरूष को पृथक वर्ग के रूप में मान्यता देना या प्रोत्साहन घातक है, परिवार और समाज व्यवस्था के लिए विघटनकारी है।

(731) भारतीय संविधान में परिवार शब्द या परिवार व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है। इस कमी के कारण कानून परिवार व्यवस्था में मनमाना हस्तक्षेप करता रहता है। संवैधानिक व्यवस्था में परिवार को भो मान्यता मिलनी चाहिए।

(732) सामूहिक सम्पत्ति तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर एक साथ रहने वाले व्यक्तियों के समूह को परिवार कहते हैं। परिवार की सम्पत्ति पर सबका समान अधिकार होगा अर्थात् किसी का कोई अधिकार तब तक नहीं होगा जब तक वह परिवार में है। परिवार के प्रत्येक अच्छे–बुरे कार्य के परिणाम में सबका बराबर दायित्व या अधिकार होगा। परिवार के किसी भी सदस्य के लिए अपराध का उत्तरदायित्व भी पूरे परिवार का होना चाहिए। परिवार एक टीम की तरह होगा। परिवार के सभी सदस्यों का लाभ–हानि, सुख–दुख संयुक्त होगा। किसी सदस्य का कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं होगा। प्रत्येक परिवार का एक मुखिया होगा जो कार्यपालक होगा। मुखिया की नियुक्ति संयुक्त परिवार का प्रमुख करेगा।

(733) प्रत्येक परिवार या कई परिवारों को मिलाकर एक संयुक्त परिवार बनेगा। प्रत्येक संयुक्त परिवार का एक प्रमुख, होगा जो औपचारिक होगा, पारम्परिक होगा तथा परिवार के सदस्यों द्वारा चुना जाएगा जिसमें सबसे अधिक उम्र के व्यक्ति को प्राथमिकता होगी। परिवार का प्रत्येक सदस्य परिवार के मुखिया का आदेश, परिवार का मुखिया, प्रमुख का आदेश तथा प्रमुख, परिवार का आदेश मानने के लिए बाध्य होगा। असहमति हो तो ऊपर की इकाई में अपील हो सकती है। सम्पत्ति का विभाजन, मुखिया का चुनाव, प्रमुख का चुनाव (उम्र छोड़कर) अपराधों के परिणाम में सहभागिता या निर्णय में सहभागिता में उम्र, लिंग या योग्यता का कोई भेद नहीं होना चाहिए। परिवार की संरचना में रक्त सम्बन्धों की अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए। परिवार शब्द की नई व्यवस्था चीन के कम्यून, गांधीजी के ट्रस्टीशिप के आर्थिक सिद्धान्त और भारतीय परिवार पद्धति को एक साथ मिलाकर बनाई गई है। भारत की परिवार व्यवस्था को तोड़ने में पश्चिम के देशों की भी बहुत रूचि है और वामपंथियों की भी। परिवार व्यवस्था को कमजोर करने के नए–नए प्रयोग होते रहते हैं। हमारी परिवार व्यवस्था लगातार कमजोर हो रही है। सरकार के कानूनी हस्तक्षेप तथा पश्चिम की आधुनिक परिवार व्यवस्था के सम्मिलित प्रयास से हमारी परम्परागत परिवार व्यवस्था मुकाबला नहीं कर पा रही है। इसलिए हमें अपनी व्यवस्था में सुधार करना चाहिए।

(734) सम्पत्ति के सम्बन्ध में अब तक तीन सिद्धान्त स्थापित हुए हः– (1) पश्चिम का व्यक्तिगत सम्पत्ति का सिद्धान्त (2) गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त (3) साम्यवाद का सामाजिक सम्पत्ति का सिद्धान्त। वर्तमान समय में पहला सिद्धान्त चल रहा है। मरा पारिवारिक सम्पत्ति का सिद्धान्त व्यक्तिगत सम्पत्ति और ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के बीच का मार्ग है जिसमें सम्पत्ति पूरे परिवार की सामूहिक होगी जो परिवार से पृथक होते समय ही सदस्य संख्या के आधार पर उसे मिल सकती है तथा वह सम्पत्ति स्वयं की न होकर उस परिवार की होगी जिसमें वह व्यक्ति जाकर शामिल होगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का सदस्य होगा।

(735) जब तक व्यक्ति किसी परिवार का सदस्य नहीं बनता तब तक वह ग्राम सभा का सदस्य बन सकता है।

(736) विवाह में लड़के–लड़की की स्वीकृति, परिवार की सहमति और समाज की अनुमति को परम्परा के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रेम विवाहों को प्रतिष्ठा का प्रश्न मानकर उनका विरोध करना जितना घातक है उससे अधिक घातक है उनको प्रोत्साहित करना। क्योंकि ऐसे विवाह परिवार व्यवस्था को गंभीर क्षति पहुँचाते हैं।

(737) प्रत्येक परिवार का अपना एक संविधान होगा। परिवार अपनी चुनाव प्रणाली तथा पूरी कार्य पद्धति संविधान के माध्यम से तय करने के लिए स्वतंत्र होगा। हमारी परिवार व्यवस्था में हम यह प्रावधान भी कर सकते हैं कि किसी ऊपर की इकाई में मतदान के समय परिवार का मुखिया मतदान करे और उसके परिवार की सदस्य संख्या के आधार पर न गिने जाए।

परम्पराः—

(738) जो परम्परागत है वह पूरी तरह अंतिम सत्य है और कोई बदलाव उचित नहीं या जो भी परम्परागत है वह पूरी तरह गलत है उसे पूरी तरह बदल दें; ये दोनों विचार गलत हैं। ऐसे विषयों में देश काल परिस्थिति के अनुसार संशोधन करना चाहिए।

व्यक्तिगत सम्पत्तिः—

(741) वर्तमान विश्व में प्रत्येक व्यक्ति में स्वार्थ भाव बढ़ता जा रहा है। व्यक्तिगत सम्पत्ति पूरी तरह प्रतिबंधित करके पारिवारिक संयुक्त सम्पत्ति का मार्ग व्यावहारिक समाधान है। नई व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के लिए परिवार बनाना अनिवार्य होगा और सम्पत्ति परिवार की संयुक्त होगी।

आक्रोशः—

(742) दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति में आक्रोश की भावना बढ़ रही है। भारत भी इससे अलग नहीं है। परिवार में सामूहिक उत्तदायित्व होने से परिवार अपने सदस्यों पर अनुशासन सिखाने और बनाए रखने के लिये बाध्य होगा।

साम, दाम, दण्ड, भेदः—

(751) दूसरों से व्यवहार करने में चार भूमिकाएं महत्वपूर्ण मानी जाती हैंः— साम, दाम, दण्ड, भेद। प्रत्येक व्यक्ति या समूह समय—समय पर चारों का प्रयोग करता है किन्तु दुनिया की अलग—अलग संस्कृतियों की प्राथमिकताएं अलग—अलग होती हैं। भारतीय संस्कृति साम को अधिक महत्व देती है, पश्चिम की संस्कृति दाम अर्थात धन को, इस्लामिक संस्कृति दण्ड अर्थात बल प्रयोग को तथा साम्यवादी संस्कृति भेद अर्थात वर्ग विद्वेष को महत्व देती है।

समाजशास्त्रः—

(761) व्यक्ति की स्वतंत्रता और सहजीवन का तालमेल समाजशास्त्र कहलाता है। प्रत्येक व्यक्ति हमेशा दो भूमिकाओं में रहता हैः— (1) व्यक्ति (2) नागरिक। कोई भी व्यक्ति कभी समाज से अलग होकर नहीं रह सकता दूसरी ओर किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता कभी भी शून्य नहीं की जा सकती है।

762) हमारा नारा है – मानसिक बीमारी से जंग, समाज विज्ञान क संग, मानसिक समस्यो का समाधान, समाज शास्त्र का ज्ञान। अतः समाज शास्त्र और समाज विज्ञान को अलग–अलग समझने की जरूरत है।

महिला सशक्तिकरणः–

(770) जब तक कोई महिला या पुरूष किसी परिवार की इकाई है तब तक उसकी अलग पहचान समाप्त हो जाती है। महिला तब मां, बेटी, पत्नी तो हो सकती है किन्तु महिला नहीं रह सकती। परिवार का कौन सदस्य मजबूत हो यह परिवार तय कर सकता है कानून नहीं।

(771) महिला सशक्तिकरण का विचार परिवार तोड़ने वाला तथा बुरी नीयत से बढ़ाया जा रहा है। मुठ्ठी भर धूर्त और आधुनिक महिलाएं राजनेताओं के साथ षडयंत्र करके यह नारा लगा रही हैं। परिवारों में महिलाओं के साथ भेदभाव है; उस भेदभाव का दुरूपयोग करना गलत कार्य है। आज तक किसी महिला ने कभी यह बात स्पष्ट नहीं की कि वे महिलाएं समान अधिकार चाहती हैं या विशेष अधिकार। इन आधुनिक महिलाओं को समान अधिकार भी चाहिए और विशेष अधिकार भी। महिलाओ के सम्बन्ध में सरकार द्वारा बनाए गए कानून अस्पष्ट हैं। सरकार यह स्पष्ट नहीं कर रही है कि महिला और पुरूष के बीच की दूरी घटनी उचित है या बढ़नी।

(772) हमारे संविधान निर्माताओं की नासमझी या बुरी नीयत ने इस समस्या को उलझा दिया है। हमारी वर्तमान व्यवस्था में महिलाओं को परिवार में कम और समाज में कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं। अब व्यवस्था में सारे भेद समाप्त करके सबके समान अधिकार कर देने चाहिए।

(773) (1) महिलाओं पर अत्याचार की घटनाएं अतिरंजित और बुरी नीयत का प्रचार हैं। (2) पति–पत्नी का सहमति से एकाकार होना दानो की समान मजबूरी है। (3) यदि सामान्यतया परिवार में महिलाओं पर अत्याचार ही होता है तो महिलाए ऐसी व्यवस्था के अन्तर्गत दूसरे घर में क्यों जाती हैं। (4) हर लड़की और उसके मां–बाप लड़की की तुलना में अधिक योग्य और लड़के के मां–बाप लड़के की तुलना में कम योग्य लड़की से विवाह करना उचित समझते हैं। कलेक्टर लड़का चपरासी की योग्यता रखने वाली लड़की के साथ रहने के लिए सहमत है किन्तु कलेक्टर लड़की चपरासी की योग्यता रखने वाले लड़के से विवाह करने के लिए सहमत नहीं होगी। विवाह के समय अधिक योग्य लड़का और परिवार तथा विवाह बाद समानता का नाटक। (5) जब परिवार में आमतौर पर पुरूष अत्याचारी ही होता है तो पति के मरने पर महिलाएं रोती क्यों हैं, अत्याचारी मर गया। (6) एक कलेक्टर या बड़े उद्योगपति की पत्नी अपने सैकड़ों पुरूष कर्मचारियों को दबाकर रखती है तो कहाँ है भेदभाव। (7) यह प्राकृतिक आवश्यकता है कि पति को आक्रामक तथा पत्नी को आकर्षक मुद्रा में होना चाहिए। (8) महिला भेदभाव का लाभ उठाने के उद्देश्य से दिल्ली में राजघाट पर सरकार ने

एक बड़ा बोर्ड लगवाकर लिखा है कि महिलाओं पर अत्याचार कानूनन अपराध है। मैं आज तक नहीं समझा कि भारत में किस–किस पर अत्याचार करने की कानूनन छूट है। (9) कोई–कोई ना समझ तो कन्या भ्रूण हत्या के कानून की भी वकालत करता है जबकि भ्रूण हत्या अपराध हो सकता है किन्तु उसमें भेद करना ठीक नहीं क्योंकि लड़कों की भ्रूण हत्या तो प्रायः होती ही नहीं।

(774) परिवार एक कबड्डी मैच की प्रतिस्पर्धा है जिसमें आगे बढ़ने के लिए टीम भावना चाहिए। इसे तीन पैर की दौड़ भी कह सकते हैं जिसमें पति–पत्नी के एक–एक पैर बंधे हैं। दोनों में कौन मजबूत हो और कौन कमजोर यह अन्तिम निर्णय सिर्फ वही परिवार कर सकता है, काई बाहर का प्रतिस्पर्धी नहीं। मोदी या रामदेव जी सहित अन्य सभी नेता अनावश्यक महिला सशक्तिकरण के लिए परेशान हैं। परिवार सशक्तिकरण का नारा लगाइए और सबके विशेषाधिकार समाप्त करके समान अधिकार घोषित कर दीजिए।

(775) महिलाओं पर पुरूषों का अत्याचार शब्द असत्य और घातक है। समाज में महिलाओं का पिछड़ना पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था में समयानुसार परिवर्तन न करने की भूल मात्र है, अत्याचार नहीं। महिलाओं को परिवार की सम्पत्ति में समान अधिकार न मिलना तथा विवाह के समय लड़की की अपेक्षा अधिक योग्य वर की तलाश हो इसके कारण हैं।

(776) परम्परागत परिवारों की महिलाएं अनुशासन, संतानोत्पत्ति, नैतिक उन्नति और सहजीवन को अधिक महत्व देती हैं तो आधुनिक महिलाएं स्वतंत्रता, सेक्स, भौतिक उन्नति तथा अधिकारों को अधिक महत्व देती हैं। परम्परागत परिवारों में घुटन है तो आधुनिक में टूटन। टूटन से घुटन अधिक घातक है।

आरक्षणः–

(777) महिला आरक्षण को मांग पूरी तरह गलत और स्वार्थपूर्ण है। महिला आरक्षण राजनैतिक शक्ति को और कम परिवारों तक केन्द्रित कर देगा। स्वतंत्रता के बाद संसद में पांच सौ परिवारों का प्रतिनिधित्व था जा अब घटकर चार सौ हो गया है तथा महिला आरक्षण के बाद यह और घट कर तीन सौ तक रह जाएगा क्योंकि पुरूष राजनेताओं की महिलाओं का आरक्षित सीटों पर जीतना आसान हो जाएगा। यही हाल सरकारी नौकरियों तथा अन्य विषयों में भी होगा।

(778) एक पुरूष और एक महिला को मिलाकर परिवार बनता है। महिला आरक्षण अन्य महिलाओं के लिए भी प्रसन्नतासूचक नहीं। किसी अन्य महिला की अपेक्षा अपने परिवार के पुरूष को नौकरी या पद प्राप्त होने पर अधिक प्रसन्नता होती है।

(779) आरक्षण समाप्त करने की वर्तमान आवाज षड़यंत्र है। श्रम मूल्य वृद्धि, महिलाओं को सम्पत्ति में समान अधिकार, असहायो का भरण–पोषण का दायित्व शासन को देकर आरक्षण समाप्ति तथा समान नागरिक संहिता एक साथ लागू होनी चाहिए।

हजारों वर्ष पूर्व सवर्णों द्वारा लागू किए गए जातीय आरक्षण का दुष्परिणाम है कि आज समाज में अनेक जातियां पिछड़ गई हैं। वैश्य और क्षत्रियों का आरक्षण तो बहुत सीमा तक समाप्त है किन्तु ब्राह्मणों का समाज पर जातीय एकाधिकार अभी समाप्त नहीं हुआ है। वर्तमान आरक्षण और उक्त सामाजिक आरक्षण को एक साथ समाप्त करना चाहिए। तात्कालिक रूप से समाधान हेतु आरक्षण का लाभ ले चुके व्यक्ति और उसके परिवार को सदा के लिए आरक्षण से बाहर कर देना चाहिए। किन्तु वर्तमान में श्रम शोषक अवर्ण ऐसे किसी प्रयास का भरपूर विरोध करेंगे।

दहेजः—

(781) दहेज एक सामाजिक व्यवस्था थी कोई गलत प्रथा नहीं। हमारे नासमझ नेताओं ने दहेज प्रथा को नासमझी में बदनाम कर दिया। दहेज अपराध भी नहीं है और अनैतिक भी नहीं है। दहेज—संबंधी कानून ही गलत है।

पर्दा प्रथाः—

(782) प्राचीन समय में पर्दा प्रथा एक सामाजिक व्यवस्था थी, कोई बुराई नहीं। वर्तमान बदली हुई स्थिति में पर्दा प्रथा अप्रासंगिक हो गई है। यह प्रथा समाप्त हो जाए तो अच्छा होगा किन्तु यह परिवारों का आंतरिक मामला है।

(783) परिवार की महिलाओं की पोशाक कैसी हो यह परिवार तय कर सकता है, कानून नहीं। हमारा खानपान, वेष—भूषा, रहन—सहन तब तक हमारा आंतरिक मामला है जब तक वह अन्यों के लिए हानिकारक न हो। इस विषय में सरकार को कानून नहीं बनाना चाहिए।

सती प्रथाः—

(784) बहुत पुराने समय में देश काल और परिस्थिति के अनुसार देव दासी प्रथा, सतीप्रथा, बहुविवाह, कन्या भ्रूण हत्या आदि प्रथाएं शुरू हुई जो अब अप्रासंगिक हो चुकी हैं। इस प्रकार का कोई भी कानून अब व्यवस्था पर बोझ हैं। कन्या भ्रूण हत्या की जगह भ्रूण हत्या निषेध कानून बन सकता है।

विवाहः—

(790) सेक्स अर्थात शारीरिक इच्छा पूर्ति मनुष्य की प्राकृतिक आवश्यकता है। इसे बलपूर्वक नहीं रोका जा सकता। इसलिए सहमति से किया गया सेक्स कभी अपराध नहीं हो सकता। सहमत सेक्स में बाधक कानून बलात्कार की घटना में सहायक होते है।

(791) अनियंत्रित सेक्स बहुत घातक होता है। इस प्रकार के सम्बन्धों को अनुशासित होना ही चाहिए। विवाह प्रणाली ऐसे अनुशासन को बरकरार रखने का सबसे अच्छा समाधान है। विवाह एक सामाजिक अनुशासन है, इसमें कानून का कोई भी हस्तक्षेप

गलत है। विवाह के चार उद्देश्य होते हैं:– (1) शारीरिक इच्छा पूर्ति (2) सन्तानोत्पत्ति (3) माता–पिता के ऋण से मुक्ति (4) सहजीवन का अभ्यास।

(792) विवाह में वर–वधु की स्वीकृति, परिवार की सहमति और समाज की अनुमति आवश्यक है। किसी एक की कमी आदर्श विवाह नहीं है। लिव इन रिलेशन शिप या प्रेम विवाह को बल पूर्वक नहीं रोक सकते किन्तु इन्हें प्रोत्साहित करना घातक है।

(793) किसी भी महिला या पुरूष के लिए काम संतुष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना अनुशासन। हमारी परम्परागत परिवार व्यवस्था में दोनों का संतुलन रखा गया। ज्येष्ठ भाई से दूरी और देवर से निकटता संतुलन का ही प्रयास है। मंदिर, धर्मस्थान तथा आश्रमों को भी पवित्र माना जाता है। ऐसी जगहों पर अनुशासित व्यभिचार की अनदेखी की जाती है। नियोग प्रथा भी मान्य है।

(794) संतान श्रेष्ठता के उद्दश्य से प्राचीन समय में अनुलोम–प्रतिलोम विवाह प्रथा थी। उच्च वर्ण का लड़का एवं निम्न वर्ण की लड़की का विवाह मान्य था तो उच्च वर्ण की लड़की एवं निम्न वर्ण के लड़के का विवाह प्रतिबंधित। प्रतिलोम विवाह असामाजिक कार्य माना जाता था किन्तु अपराध नहीं। समाज ऐसे असामाजिक कार्यो में दण्ड नहीं दे सकता किन्तु बहिष्कृत कर सकता है। संभवतः उसी आधार पर अछूत की प्रणाली विकसित हुई हो।

(795) वैश्यावृत्ति अनैतिक कार्य है, प्रतिबंधित कार्य नहीं। वैश्यावृत्ति को निरूत्साहित कर सकते हैं किन्तु रोक नहीं सकते। विवाह की उम्र बढ़ाना, वैश्यावृत्ति को रोकना, महिला–पुरूष के बीच दूरी घटाने का प्रयत्न करना बलात्कार वृद्धि में सहायक होते हैं।

अनैतिक और अपराधः–

(796) प्राचीन काल में अपराध तथा अनैतिकता अलग–अलग रूप से परिभाषित थे। अपराध के लिए सिर्फ कानून ही दण्ड दे सकता था, समाज नहीं। अनैतिक के लिए समाज सिर्फ बहिष्कृत कर सकता था, दण्डित नहीं। गुलामी काल में जब मुसलमान भारत आए तो उन्होंने सामाजिक दण्ड की कुप्रथा विकसित कर दी और जब अंग्रेज आए तो उन्होंने सामाजिक दण्ड के साथ–साथ सामाजिक बहिष्कार भी गैर कानूनी बना दिया। आज अनेक नासमझ सामाजिक बहिष्कार का भी विरोध करते देखे जाते हैं। सामाजिक बहिष्कार करना हमारा मौलिक अधिकार है। सामाजिक बहिष्कार को अवैध कहना गलत है। गलती कानून की है, समाज की नहीं।

छुआछूतः–

(797) छुआछूत मानना एक सामाजिक बुराई है किन्तु सरकार इस विषय में कानून नहीं बना सकती। मैं किसी व्यक्ति को नहीं छूना चाहता और दूरी बनाकर रखना चाहता हूँ तो आप बाध्य नहीं कर सकते हैं।

भाग 8 आर्थिक

सम्पत्ति अधिकारः—

(801) स्वतंत्रता और सहजीवन का तालमेल ही समाजशास्त्र है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता असीम होती है और किसी अन्य के साथ जुड़ते ही उसकी स्वतंत्रता समान और संयुक्त हो जाती है।

(802) किसी भी व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर किसी अन्य के साथ जुड़ते ही उसकी सम्पत्ति भी संयुक्त हो जाती है। इस तरह व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की छूट नहीं हो सकती। इसलिए परिवार की सम्पत्ति संयुक्त होनी चाहिए, व्यक्तिगत नहीं। परिवार छोड़ते समय व्यक्ति अपना हिस्सा लेकर नए परिवार के साथ जुड़ सकता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की वर्तमान अवधारणा पूरी तरह घातक है।

(803) पश्चिम का पूँजीवाद कहता है कि मशीनों का अधिक उपयोग करके उत्पादन के निर्यात द्वारा विकास करो। साम्यवाद कहता है मशीनों का अधिकतम उपयोग करके उसका लाभ आम नागरिकों में बांट दो। गांधी कहते हैं मशीनों का कम उपयोग करो। मेरा मत है कि कृत्रिम ऊर्जा को बहुत मंहगा कर दो।

(804) दुनिया में तीन सम्पत्ति सिद्धान्त बताए गए हैं:— (1) व्यक्तिगत सम्पत्ति जो पश्चिम में है (2) सार्वजनिक सम्पत्ति जो रूस तथा चीन में थी (3) गांधी का ट्रस्टीशिप जो अस्पष्ट है। सबको मिलाकर चाथा सिद्धान्त है परिवार की सम्पत्ति।

कर प्रणालीः—

(810) वर्तमान भारत में राज्य की नीयत खराब है। राज्य निर्यात की प्रतिस्पर्धा के लिए श्रम मूल्य घटाकर रखना चाहता है। इसका आसान मार्ग यह है कि जो वस्तु गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, छोटे किसान अधिक उत्पादन और उपभोग करें उन पर अप्रत्यक्ष कर लगाकर प्रत्यक्ष छूट दी जाए। जो वस्तु अमीर लोग अधिक उत्पादन उपभोग करें उन पर प्रत्यक्ष कर लगाकर अप्रत्यक्ष छूट दी जाए। भारत सरकार लगातार यह कर रही है जो कि सरासर गलत है।

(811) भारत सरकार को सभी प्रकार के कर समाप्त करके सिर्फ सम्पत्ति कर लगाना चाहिए। सम्पत्ति कर का नाम सुरक्षा कर रखा जा सकता है। यह कर सब पर समान रूप से बिना भेदभाव के हों। कृत्रिम ऊर्जा की बहुत भारी मूल्य वृद्धि करके प्राप्त धन प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से वितरण कर दें। अन्य सारी आर्थिक सुविधाएं समाप्त कर दें। कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से निर्यात पर पड़ने वाले प्रभाव से बचने के लिए कोई अलग व्यवस्था कर सकते हैं।

(812) भारत को आयात कम करके निर्यात बहुत बढ़ाना चाहिए। कृत्रिम ऊर्जा बहुत महंगी करने से आयात बहुत कम हो जाएगा। निर्यात बढ़ाने से उपभोक्ता वस्तुएं महंगी होंगी। इसका सीधा लाभ किसानों तथा उत्पादकों को होगा। उत्पादन बढ़ेगा, खपत घटेगी तथा जीडीपी सुधरेगी।

(813) बिचौलिया कभी कोई टैक्स नहीं देता। टैक्स या तो उत्पादक देता है या उपभोक्ता। अधिकांश उत्पादक और उपभोक्ता ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं तथा बिचौलिये शहरी क्षेत्रों में। स्पष्ट है कि शहरी क्षेत्रों पर किए जाने वाले धन का अधिकांश हिस्सा टैक्स के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों से ही आता है। सफल अर्थनीति की पहचान है उत्पादक और उपभोक्ता मूल्यों के बीच न्यूनतम अंतर। दुर्भाग्य से भारत में यह अंतर बढ़ रहा हैं। अनावश्यक नियंत्रण और टैक्स इस अंतर को और अधिक बढ़ाते हैं। व्यापारियों द्वारा येनकेन प्रकारेण धन कमाना ही उद्देश्य मान लिया जाता है। मिलावट और धोखा व्यापारिक कुशलता का चिन्ह बन गया है। टैक्स और नियंत्रण अनैतिक व्यापारियों के लिए बसन्त का मौसम है। ये भ्रष्ट व्यापार में बहुत सहायक होते हैं। टैक्स और नियंत्रण भ्रष्टाचार की भी जड़ है। इनकी संख्या और मात्रा जितनी अधिक होगी भ्रष्टाचार भी उतना ही अधिक होगा।

(814) पिछले साठ वर्षो में भूमि के मूल्यों में अनियंत्रित वृद्धि हुई है। भूमि के प्रति सामान्यतया आकर्षण भी बढ़ा है। भूमि का लगान आज भी पहले जितना ही है जबकि लगान शुरू होने वाले वर्ष की अपेक्षा रूपए का मूल्य सिर्फ एक पैसे बचा है। भूमि का लगान कम होना उन व्यवसायी भूपतियों के लिए बहुत लाभकारी है जो मूल्य वृद्धि के लाभ के लिए जमीन खरीदकर रखते हैं। भूमि का लगान पचास गुना कर देना ही भूमि की समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान है। इससे भूमि के मूल्य घटेंगे। भूमि व्यवसायियों से निकलकर किसानों के पास आएगी तथा भूमि के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाएगा। यदि भूमि सहित सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दो प्रतिशत कर लगा दिया जाए तो भूमि पर लगान की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

अर्थपालिकाः—

(815) लोकतंत्र में जिस तरह स्वतंत्र न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका है उसी तरह स्वतंत्र अर्थपालिका भी होनी चाहिए। जिस व्यवस्था के पास सेना, पुलिस, न्याय के असीम अधिकार हैं उसे ही अर्थ के भी असीम अधिकार देना उचित नहीं है।

(816) अर्थपालिका, स्वतंत्र न होने का भारत में बहुत दुरुपयोग हुआ है। तंत्र से जुड़ी इकाइयां किसी भी सीमा तक 'कर' लगा सकती हैं और कहीं भी स्वेच्छा से खर्च कर सकती हैं। हमारी राजनैतिक व्यवस्था ने स्वतंत्र बाजार व्यवस्था को गुलाम बना लिया, अपना वेतन—भत्ता मनमाना बढ़ा लिया, अपने चारण—भाटो को मनमाने पुरस्कार दिए तथा सम्पत्ति के मौलिक अधिकार को भी समाप्त घोषित कर दिया।

(817) पूरी दुनिया में पश्चिमी जगत और विशेषकर यहूदी तो अर्थव्यवस्था को ही सर्वोच्च प्राथमिकता मानते हैं। इन देशों का पूँजीवाद सारी दुनिया को प्रभावित कर रहा है। दूसरी ओर भारत है जहाँ अर्थव्यवस्था पूरी तरह राज्य की गुलाम है।

'कर' चोरी तथा काला धनः—

(818) कर चोरी या काला धन रखना न कोई अपराध होता है न ही अनैतिक। यह कार्य सिर्फ गैरकानूनी होता है। सरकार की गलत कर नीतियों के कारण टैक्स चोरी और काला धन संग्रह करने की प्रवृत्ति बढ़ती है। आर्थिक विषमता को आर्थिक तरीके से न रोककर प्रशासनिक तरीके से रोकने की जिद्द ने काले धन की समानान्तर अर्थ व्यवस्था खड़ी कर दी। सम्पत्ति कर के रूप में केवल एक प्रकार का 'कर' होना चाहिए। इनकम टैक्स खत्म काला धन खत्म।

(819) जीएसटी के रूप में भारत सरकार का कई टैक्स हटाकर एक टैक्स लाना अच्छा कदम है। इससे भ्रष्टाचार घटा तथा टैक्स की जटिलता कम हुई।

डॉलर, रुपयाः—

(821) स्वतंत्रता के समय एक रूपए तथा डालर का मूल्य बराबर था। आज पचहत्तर मूल पैसे के बराबर डॉलर है। क्योंकि भारत का वर्तमान एक सौ पांच रूपया एक मूल रूपए के बराबर है। इस तरह स्वतंत्रता के बाद डॉलर की तुलना में रुपया मजबूत हुआ है।

मुद्राः—

(822) वस्तु विनिमय को सरल बनाने के लिए बनाए गए माध्यम को मुद्रा कहते हैं। मुद्रा का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता। मुद्रा तो किसी विश्वसनीय इकाई की गारंटी तक सीमित होती है।

(823) सरकारें आय—व्यय के असंतुलन को ठीक करने के लिए मुद्रा प्रसार विस्तार करती हैं और यही मुद्रा प्रसार मुद्रास्फीति कहलाता है।

(824) सरकारें वस्तुओं के आदान—प्रदान पर टैक्स लगाती हैं, इसलिए सरकार सीधा वस्तु विनिमय रोक देती हं। इस रोक के कारण सरकार लोगों को वस्तु विनिमय के लिए सरकारी मुद्रा का प्रयोग अनिवार्य कर देती हैं। यदि वस्तु विनिमय स्वतंत्र और कर मुक्त दिया जाए तो मुद्रा का महत्व कम हो जाएगा और सरकारी मुद्रा के साथ निजी मुद्रा भी प्रचलित हो सकती है।

कृत्रिम ऊर्जाः—

(830) ऊजा के दो स्रोत होते हैंः— जैविक और कृत्रिम। जैविक ऊर्जा में मनुष्य और पशु माने जाते हैं तो कृत्रिम में डीजल, पेट्रोल, बिजली, कोयला, गैस और सौर ऊर्जा। कृत्रिम ऊर्जा की खपत बढ़ने से प्रदूषण अधिक बढ़ता है। श्रमिक या जैविक ऊर्जा से

उत्पादन की अपेक्षा मशीनी या कृत्रिम ऊर्जा से उत्पादन सस्ता होता है। परिणामस्वरूप श्रम उत्पादन की मांग घटने से बेरोजगारी फैलती है। श्रम का मूल्य नहीं बढ़ पाता। विदेशी मुद्रा का अभाव होता है। जिसे ठीक करने के लिए अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं का निर्यात करना पड़ता है। अनिवार्य उपभोक्ता वस्तुओं पर कर लगाने पड़ते हैं। सम्पन्न लोगों का व्यय घटता है और आय बढ़ती है परन्तु श्रमिकों के लिए इसके विपरीत होता है। शहरी जीवन सस्ता और रोजगार मूलक होने से शहरी आबादी गांवों की तुलना में लगातार बढ़ती जाती है। विदेशी कर्ज बढ़ता जा रहा है। आवागमन सस्ता होन से उद्योग केन्द्रित होते हैं।

(831) यह कहना गलत है कि भारत में कृत्रिम ऊर्जा के मूल्य बढ़े हैं। सच्चाई यह है कि कृत्रिम ऊर्जा पिछले पचास वर्षो से सस्ती हुई है। सन् 1947 के रूपए के मूल्य से वर्तमान रूपए की तुलना करनी होगी। महंगाई का ठीक आँकलन करने के लिए आम लोगों की क्रय शक्ति से उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य की भी तुलना करनी होगी। क्रय शक्ति बढ़ने तथा उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य घटने के कारण लोगों का जीवन स्तर सुधरा तथा सम्पन्नता बढ़ी है। ज्यों–ज्यों सम्पन्नता बढ़ती है त्यां–त्यों कृत्रिम ऊर्जा पर निर्भरता तथा उपयोग की मात्रा बढ़ती जाती हैं। ज्यों–ज्यों गरीबी बढ़ती है त्यों–त्यों श्रम और रोटी पर निर्भरता बढ़ती जाती है। वर्तमान समय में कृत्रिम ऊर्जा का उपयोग और निर्भरता कई गुना अधिक बढ़ी है तथा श्रम और रोटी पर निर्भरता घटी है।

(832) सस्ती कृत्रिम ऊर्जा भारत की अधिकांश आर्थिक समस्याओं का कारण है। कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि अनेक आर्थिक समस्याओं का समाधान है। कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से अनेक लाभ होंगेः– (1) शहरी जीवन महंगा होने तथा शहरों में रोजगार घटने से शहरी आबादी का असंतुलन घटेगा। (2) श्रम की मांग और मूल्य बढ़ेगा। (3) आवागमन महंगा होने से ग्रामीण उद्योग, लघु उद्योग पुनर्जीवित होंगे जिससे ग्रामीण रोजगार बढ़ेगा। (4) डीजल पेट्रोल की खपत घटने से पर्यावरण प्रदूषण कम होगा। (5) डीजल पेट्रोल का आयात कम हाने से आयात–निर्यात का असंतुलन दूर होगा। (6) आर्थिक असमानता कम हो जाएगी। (7) सब प्रकार के टैक्स समाप्त होने से काला धन नहीं बनेगा। (8) देश का उत्पादन बढ़ेगा खपत घटेगी।

(833) (1) आश्चर्यः– भारत में श्रम उत्पादन जैसेः– बीड़ी पत्ता, साल बीज, महुआ आदि वनोपज तथा अनिवार्य उपयोग जैसे–रोटी, कपड़ा, दवा, पशु चारा, ईट, खपड़ा आदि पर भारी कर हैं। बीड़ी पत्ता इकट्ठा करने वाले को आधी कीमत दी जाती है। सरसों तेल पर दस रूपये लीटर, दाल पर सवा रूपए किलो टैक्स है। लकड़ी पर तीस प्रतिशत टैक्स है। (2) आश्चर्यः– अखबार, कागज, पोस्टकार्ड पर सब्सीडी है। पोस्टकार्ड की कीमत बढ़ने से गरीब मर जाएगा और अनाज, कपड़ा दवा पर टैक्स लगने पर नहीं मरेगा। यह सिद्धांत मेरी समझ से बाहर होने से मैंने इसे 'आश्चर्य' लिखा है। (3) आश्चर्यः– भारत में साईकिल पर टैक्स लिया जाता है जो कि प्रति साईकिल करीब तीन सौ रूपए तक है, किन्तु इसके खिलाफ अब तक कोई आंदोलन नहीं हुआ। (4)

आश्चर्यः– भारत के राजनेताओं या समाजशास्त्रियों को यह पता ही नहीं है कि– भारत में साईकिल, रोटी, कपड़ा, मकान, दवा, कृषि उत्पादन तथा अपने खेत में पैदा किए गए पेड़, बांस पर भारी कर लगता है।

श्रम शोषणः–

(834) दुनिया के बुद्धिजीवी हजारों वर्षों से श्रम शोषण के नए नए तरीके खोजते रहे हैं। इसके लिए भारत के बुद्धिजीवियो ने जातीय आरक्षण को महत्व दिया तो पश्चिम ने पूँजीवाद को।

(835) भारत में श्रम शोषण के चार तरीके सर्व स्वीकृत हैंः– (1) कृत्रिम ऊर्जा मूल्य नियंत्रण, (2) श्रम मूल्य वृद्धि की सरकारी घोषणा, (3) शिक्षित बेरोजगारी दूर करने की कोशिश, (4) जातीय आरक्षण। भारत का हर बुद्धिजीवी वामपंथियों के नेतृत्व में चारों दिशाओं में निरन्तर सक्रिय रहता है। प्रत्येक राजनैतिक दल पूरा प्रयत्न करता है कि आर्थिक असमानता वृद्धि के उसके प्रयास पूरी तरह अप्रत्यक्ष भी हों तथा प्रजातांत्रिक भी। भारत के सभी बुद्धिजीवी इन चारों प्रकार के प्रयत्नों के आधार पर मांग उठाते रहते हैं तथा पूंजीपतियों के समर्थक ऐसी मांगों को स्वीकार कर लेते हैं।

(836) श्रम मूल्य दो प्रकार के होते हैंः– वास्तविक और कृत्रिम। वास्तविक श्रम मूल्य वह होता है जिस पर किसी भी व्यक्ति को काम मिलना स्वाभाविक हो और कृत्रिम श्रम मूल्य वह होता है जो सरकार घोषित करती हैं पर रोजगार गारंटी नहीं है। नरेगा वास्तविक श्रम मूल्य होता है तो सरकार द्वारा घोषित श्रम मूल्य कृत्रिम। सरकार द्वारा घोषित श्रम मूल्य श्रम शोषण में सहायक होता है। हमारे क्षेत्र छत्तीसगढ़ में कृत्रिम श्रम मूल्य 250 रूपए और वास्तविक 160 से 200 रूपये है। सीमावर्ती राज्य झारखंड में कृत्रिम श्रम मूल्य 250 और वास्तविक 150 से 180 रूपए है।

(837) दुनिया के अनेक देश श्रम अभाव क्षेत्र हैं और भारत श्रम बाहुल क्षेत्र। दुनिया के लिए कृत्रिम ऊर्जा श्रम सहायक है तो भारत में श्रम की प्रतिस्पर्धी। गांधीजी का मशीनीकरण घटाओ का श्रम सिद्धांत अच्छा होते हुए भी असफल रहा है। वर्धा घानी भी पावर घानी में बदल रही है। मार्क्स ने मशीनी औद्योगीकरण का समर्थन किया और उसके लाभ में श्रमिकों की भागीदारी की वकालत की परन्तु मार्क्स की श्रम नीति भी असफल रही। अब मार्क्सवादी भी मशीनीकरण के विरूद्ध खड़े हो रहे हैं। तीव्र मशीनी औद्योगीकरण तभी लाभदायक होता है जब उत्पादन क्षेत्र के बाहर उसकी खपत के लिए कमजोर क्षेत्र तैयार हों। ऐसी औद्योगिक इकाईयां उत्पादन क्षेत्र की बेरोजगारी तो दूर करती हैं परन्तु उपभोक्ता क्षेत्रों में कई गुना बेरोजगारी बढ़ा देती हैं।

(838) भारत में कुल छः आर्थिक समस्याएं हैः– (1) महंगाई (2) बेरोजगारी (3) आर्थिक असमानता (4) श्रम शोषण (5) बढ़ता विदेशी कर्ज (6) गरीबी। सभी आर्थिक समस्याओं का एक समाधान है कृत्रिम ऊर्जा में बहुत भारी मूल्यवृद्धि। यह मूल्यवृद्धि पर्यावरण–प्रदूषण, आयात–निर्यात असंतुलन आदि समस्याओं के समाधान में भी सहायक

है। इससे लघु उद्योग बढ़ेंगे और शहरी आबादी विकेन्द्रित होगी। कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से भारत में उत्पादन भी बहुत बढ़ेगा।

कृषिः–

(841) भारत में अन्य व्यवसायों की तुलना में खेती अलाभकर व्यवसाय मानी जाती है। जो लोग कहीं सफल नहीं होते वे ही खेती करते हैं।

(842) भारत की अर्थनीति पर बुद्धिजीवियों, शहरियों, अमीरों तथा उपभोक्ताओं का एकछत्र प्रभाव है। भारत में उपभोक्ता बहुत आराम में है और किसान संकट में।

(843) भारत में किसान आत्महत्या लगातार बढ़ती रही है। मजदूर या उपभोक्ता की आत्महत्या नगण्य है। भारत में कृषि उत्पादन भी तेजी से बढ़ा है। परम्परागत कृषि अलाभकर है और व्यावसायिक कृषि लाभकर। परम्परागत कृषि करने वालों को खेती बेचकर या तो मजदूरी करनी चाहिए या अन्य व्यवसाय। किसानों को दी जाने वाली सरकारी सहायता या कर्ज माफी किसानों की आत्महत्या वृद्धि में सहायक होती है।

(844) स्वतंत्रता के बाद एक मूल रुपया प्रतिदिन मजदूरी थी और सैंतीस मूल पैसे प्रति किलो गेहूं। आज प्रतिदिन मजदूरी ढाई गुनी बढ़कर ढाई मूल रूपए हो गई तो गेहूं का मूल्य आधा होकर अठारह मूल पैसे प्रति किलो। परम्परागत खेती अलाभकर होना प्रत्यक्ष है। कृषि उत्पादन का मूल्य तेजी से बढ़ना चाहिए।

(845) भारत सरकार कृषि उत्पादन पर भारी टैक्स लगाती है और उपभोक्ताओं को राहत देती है। यह निर्णय विपरीत है। खेती को लाभदायक व्यवसाय के रूप से विकसित होना चाहिए।

आर्थिक विषमताः–

(846) दुनिया में कोई भी दो व्यक्ति कभी पूरी तरह समान नहीं होते। असमानता प्राकृतिक है। भारत की सम्पूर्ण अर्थ व्यवस्था पर बुद्धिजीवियों तथा पूँजीपतियों का ऐसा सिकंजा कसा हुआ है कि हर नीति प्रजातांत्रिक तरीके से श्रम शोषण और आर्थिक असमानता बढ़ाने में सहायक ही होती है। यहाँ तक कि आर्थिक असमानता और श्रम शोषण के विरूद्ध दिन–रात आवाज उठाने वाले वामपंथी भी अन्ततोगत्वा अप्रत्यक्ष रूप से बुद्धिजीवियों और पूँजीपतियों के हितों के पक्ष की ही नीतियों का समर्थन करते हैं भले ही वे यह कार्य उन्हें गाली देकर ही क्यों न करें।

(847) वर्तमान विश्व व्यवस्था में अपनी उपलब्धियों के संग्रह का प्रमुख माध्यम सम्पत्ति माना गया है। अर्थ, सम्पत्ति का रूपान्तरण होता है। आर्थिक असमानता प्राकृतिक असमानता का स्वाभाविक रूपान्तरण है।

(848) वर्तमान समय में गरीब और अमीर के बीच के अन्तर की कल्पना एक भावनात्मक मान्यता है, कोई समस्या नही।

(849) वर्तमान विश्व में आर्थिक विषमता निरन्तर बढ़ रही है। भारत में आर्थिक विषमता वृद्धि की गति अधिक तेज हैं।

आर्थिक रेखाः–

(850) सम्पत्ति प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। कोई भी व्यवस्था व्यक्ति की सहमति के बिना उसकी सम्पत्ति की कोई सीमा नहीं बना सकती।

(851) अमीरी–गरीबी शब्द समाज में वर्ग विद्वेषकारी हैं। दोनों शब्द सापेक्ष और तुलनात्मक हैं। प्रत्येक व्यक्ति ऊपर वालो की तुलना में गरीब और नीचे वालों की तुलना में अमीर होता है। इन शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए। कुछ बिचौलिये अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए इन दोनों शब्दों का भरपूर उपयोग करते हैं। आमतौर पर राजनेताओं का एक बड़ा समूह अमीरी रेखा और गरीबी रेखा के नाम पर अपनी राजनैतिक दुकानदारी मजबूत करता रहता है। ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए। कमजोरों की मदद करना व्यवस्था का कर्तव्य होता है कमजोरों का अधिकार नहीं। कोई भी व्यवस्था आर्थिक आधार पर एक मध्य रेखा बनाकर उसके नीचे वालों को समान सहायता तथा ऊपर वालों को समान स्वतंत्रता का प्रावधान कर सकती है।

गरीबीः–

(852) भारत में प्रत्येक व्यक्ति की क्रय शक्ति बढ़ी है। गरीबों की क्रय शक्ति बहुत कम और अमीरों की तीव्रगति से बढ़ी हैं। भारत के आर्थिक विकास के आंकड़ों से स्पष्ट है कि तैंतीस प्रतिशत श्रमजीवियों की विकास दर एक प्रतिशत, मध्यम वर्ग की सात प्रतिशत तथा तैंतीस प्रतिशत उच्च वर्ग की चौदह प्रतिशत के आसपास है जिसका औसत निकालकर प्रचारित होता है। आज भी भारत की पंद्रह प्रतिशत आबादी ऐसी है जिसकी दैनिक आय प्रति व्यक्ति चालीस रूपसे से कम है। फिर भी भारत में गरीबी या गरीबों की संख्या घट रही ह। गरीबी बढ़ने का प्रचार इसकी गलत परिभाषा के कारण है।

(853) आर्थिक असमानता तथा श्रम शोषण में कमी साम्यवाद के विस्तार में घातक हैं। श्रम शोषण के चार सरकारी प्रयत्नों के परिणामों से वामपंथियों को वर्ग संघर्ष के विस्तार में सुविधा होती है, क्योंकि श्रम मूल्य वृद्धि आर्थिक सामाजिक असमानता दूर करने का सबसे आसान तरीका है। पूँजीपतियों और बुद्धिजीवियों ने श्रम की मूल्य वृद्धि को रोके रखने के लिए चारों नीतियों पर ईमानदारी से प्रयास किया है। भारत के सभी दक्षिणपंथी तथा वामपंथी राजनैतिक दल श्रम शोषण के चारों सिद्धान्तों पर मिलकर काम करते हैं। वामपंथी तो स्वयं को श्रम हितैशी घोषित करके श्रम शोषण के सिद्धान्तों की वकालत करते हैं।

(854) भारत की अधिकांश सामाजिक आर्थिक समस्याओं का समाधान श्रम मूल्य वृद्धि में निहित है। श्रम मूल्य वृद्धि के लिए चार सरकारी बाधाएँ तत्काल दूर करने की आवश्यकता है।

(855) श्रम मूल्य वृद्धि अपराध नियंत्रण में भी आंशिक सहयोगी होगी। श्रम मूल्य वृद्धि सामाजिक न्याय भी है और कानून व्यवस्था में सहायक भी।

(856) भारत में अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत दो वर्ग हैं:– (1) ग्रामीण, श्रमजीवी, मूल उत्पादन में लगा हुआ तथा गरीबी रेखा के नीचे का व्यक्ति, (2) शहरी, बुद्धिजीवी, प्रसंस्कृत उद्योग या व्यवस्था में लगा हुआ तथा गरीबी रेखा के ऊपर का व्यक्ति। हमारी अर्थनीति पहले वर्ग को प्रोत्साहित करने की होनी चाहिए। इससे यदि दूसरे वर्ग पर आंशिक विपरीत प्रभाव भी पड़े तो ठीक है। दुर्भाग्य से हमारी अर्थनीति पहले वर्ग को कम और दूसरे को अधिक प्रोत्साहन दे रही है। वर्तमान ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना पहली बार पहले वर्ग के आंशिक पक्ष में बनी है। इसका व्यापक विस्तार होना चाहिए। दुर्भाग्य से इसे प्रभावहीन बनाने की तैयारी हो रही है।

(857) भारत में शिक्षा पर व्यय बढ़ाने की मांग बुद्धिजीवियों का श्रम शोषण का एक तरीका है। समाज में तीन प्रकार के लोग हैं:– (1) अशिक्षित (2) शिक्षार्थी (3) शिक्षित। शिक्षा का व्यय अशिक्षित भी वहन करे यह पूरी तरह अन्यायपूर्ण है। मौलिक शिक्षा के अतिरिक्त सम्पूर्ण शिक्षा पर एक पैसे का व्यय भी तब तक रोक देना चाहिए जब तक पहले प्रकार के लोगों पर टैक्स पूरी तरह समाप्त न हो जाए।

बालश्रम और बंधुआ मजदूर:–

(858) बाल श्रम किसी भी रूप में न अनैतिक होता है न अपराध। हमारी सरकार पश्चिमी संस्कृति की आँख मूंदकर नकल करने की प्रवृत्ति के कारण इसे अपराध मानती है। विश्व व्यवस्था से बंधे होने के कारण भी बाल श्रम को अपराध मानना पड़ता है।

(859) भारत के कुछ पेशेवर सामाजिक कार्यकर्ता बालश्रम बंधुआ मजदूर निवारण के नाम पर ही अपनी दुकानदारी चलाते रहते हैं जबकि ऐसा शब्द अस्तित्वहीन होता है। ऐसे लोगों को विदेशी व्यवस्था सम्मानित और प्रोत्साहित करती है और ये लोग विदेशी एजेंट के रूप में समाज में समस्या पैदा करते रहते हैं। भारत सरकार को चाहिए कि वह बालश्रम तथा बंधुआ मजदूरी के नाम पर समाज में अव्यवस्था फैलाने वालों को निरुत्साहित करे। साथ ही विश्व को इस विषय में सही स्थिति से अवगत कराए।

महंगाई:–

(860) मुद्रास्फीति का अर्थ होता है नगद रुपए पर अघोषित कर। सरकार बजट घाटा पूरा करने के लिए टैक्स न लगाकर जब मुद्रा प्रसार का सहारा लेती है तब मुद्रास्फीति होती है। मुद्रास्फीति का किसी वस्तु के वास्तविक मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं होता

और जनजीवन पर भी प्रभाव नहीं पड़ता। मुद्रा स्फीति का प्रभाव सिर्फ ब्याज दर पर पड़ता है।

(861) महंगाई और मुद्रा स्फीति बिल्कुल अलग अलग होती हैं। महंगाई किसी वस्तु विशेष में आती है न कि सभी में। यदि सभी वस्तुओं का मूल्य बढ़े तो वह मुद्रा स्फीति होती है न कि महंगाई। मुद्रा यदि सोने से बदलकर चाँदी और चाँदी से बदलकर रांगा में मानने लगे तो इसे महंगाई नहीं कह सकते। महंगाई का आँकलन आम लोगों की औसत क्रय शक्ति और उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य की तुलना से होता है। यदि तुलनात्मक रूप से क्रय शक्ति अधिक बढ़ती है तब महंगाई घटी हुई मानी जाती है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक मुद्रा अवमूल्यन अनुमानित एक सौ पांच गुना तक हो चुका है। जबकि महंगाई आठ गुना तक कम हो गई है।

(862) जब महंगाई घटती है तब उसी अनुपात में आम लोगों का जीवन स्तर सुधरता है। जीवन स्तर सुधरने के अनुपात में ही सोना, चाँदी, जमीन की मूल्य वृद्धि होती है। स्वतंत्रता के बाद आम लोगों की क्रय शक्ति करीब चार गुनी बढ़ी है और आम उपभोक्ता वस्तुओं का मूल्य करीब आधा हुआ। इस तरह औसत जीवन स्तर आठ गुना ऊँचा हुआ है। जीवन स्तर ऊँचा होने के आधार पर ही सोना, चाँदी, जमीन के दाम बहुत बढ़े हैं।

(863) यदि भारत में सौ रूपए बराबर एक नया रुपया घोषित कर दें तो मुद्रा स्फीति भी खत्म हा जाएगी और महंगाई का हल्ला भी खत्म हो जाएगा किन्तु इसका जनजीवन पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

(864) महंगाई का झूठा हल्ला राजनेता, सरकारी कर्मचारी तथा सम्पन्न लोग जानबूझकर करते रहते हैं। राजनेता सत्ता परिवर्तन के उद्देश्य से, सरकारी कर्मचारी अपना वेतन बढ़ाने के लिए तथा सम्पन्न लोग आर्थिक असमानता पर से ध्यान हटाने के लिए यह हल्ला करते हैं। किसानों का शोषण इन तीनों का संयुक्त उद्देश्य होता है। महंगाई के हल्ले का लाभ उठाने में अब तक ये सब लोग सफल रहे हैं।

(865) सन् सैंतालीस में चाँदी का रुपया था। एक रूपया बराबर एक डॉलर था। आज चाँदी की तुलना में रुपया 0.2 पैसे के बराबर है। डॉलर की तुलना में रूपया 1.5 पैसे के बराबर है। मुद्रा स्फीति की तुलना में रूपया एक पैसे के बराबर है। क्या यह सम्भव है कि आपको चाँदी के रूपए के आधार पर आज वस्तुएं उपलब्ध हों। स्वतंत्रता के बाद एक मजदूर को मजदूरी के रूप में जितना अनाज देते थे उसकी तुलना में आज आठ गुना अधिक अनाज मिलता है। देश में सोना, चांदी, जमीन बहुत महंगी हुई है। श्रम मूल्य तथा कर्मचारियों का वेतन कुछ महंगा हुआ है। दाल, खाद्य तेल लगभग समान हैं। अनाज, दूध, कपड़ा, कृत्रिम ऊर्जा आदि कुछ सस्ते हुए हैं। आवागमन बहुत सस्ता हुआ है और फाउन्टेन पेन, घड़ी, बिजली के सामान नही के मूल्य के बराबर है। इन सबके बाद भी हर धूर्त महंगाई के अस्तित्व का प्रचार करता है।

बेरोजगारीः–

(866) दुनिया में बेरोजगारी शब्द की भ्रामक और अस्पष्ट परिभाषा होने से भारत में भी इस शब्द का व्यापक दुरुपयोग हो रहा है। रोजगार का आँकलन आय के आधार पर होता है। कोई अमीर व्यक्ति बेरोजगार होते हुए भी वह मजबूर नहीं है। क्येंकि आय के तीन स्रोत होते हैंः– (1) श्रम (2) बुद्धि (3) धन। बेरोजगारी की परिभाषा सिर्फ श्रम के साथ ही जोड़ी जा सकती है क्योंकि बुद्धिजीवी, पूंजीपति के पास श्रम के साथ साथ आय के अतिरिक्त स्रोत भी होते हैं।

(867) शिक्षित बेरोजगारी शब्द श्रम शोषण के उद्देश्य से बुद्धिजीवियों ने तैयार किया है क्योंकि शिक्षित व्यक्ति के पास श्रम भी है और बुद्धि भी। शिक्षा रोजगार का रूपांतरण कर सकती है रोजगार पैदा नहीं कर सकती। श्रम, रोजगार पैदा कर सकता है। बेरोजगारी की संशोधित परिभाषा यह होनी चाहिए ''किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम श्रम मूल्य पर योग्यतानुसार काम का अभाव। जो व्यक्ति न्यूनतम श्रम मूल्य से अधिक के लिए काम नहीं कर रहा वह उचित रोजगार की प्रतीक्षा में माना जाएगा, बेरोजगार नहीं। वर्तमान भारत में जिन्हें बेरोजगार प्रमाणित किया जाता है उनमें उचित रोजगार की प्रतीक्षा कर रहे लोगों को जोड़कर वास्तविक बेरोजगारों को निकाल दिया जाता है।

(868) बेरोजगारी दो प्रकार की हैः– (1) कृत्रिम (2) वास्तविक। शासन द्वारा घोषित श्रम मूल्य और वास्तविक श्रम मूल्य का अंतर वास्तविक बेरोजगारी है जबकि शासन द्वारा घोषित योग्यता का मूल्य और घोषित श्रम मूल्य के बीच का अंतर कृत्रिम बेरोजगारी है। न्यूनतम श्रम मूल्य का अर्थ है सरकार द्वारा घोषित वह श्रम मूल्य जिस आधार पर प्रत्येक बालिग और सक्षम व्यक्ति को योग्यतानुसार रोजगार देने के लिए सरकार बाध्य है।

(869) मेरे आँकलन के अनुसार भारत सरकार को पूरे भारत में समान रूप से वर्तमान रुपए के आधार पर दो मूल रूपए अर्थात दो सौ दस वर्तमान रुपए प्रतिदिन घोषित करके वर्ष भर काम की गारंटी दे देनी चाहिए।

पर्यावरण प्रदूषणः–

(870) विश्व की प्रमुख समस्याओं में पर्यावरण प्रदूषण भी एक बड़ी समस्या है। भौतिक उन्नति की प्रतिस्पर्धा पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण है। ग्लोबल वार्मिंग का सामान्यतया अर्थ पर्यावरण की ताप वृद्धि माना जाता है। ग्लोबल वार्मिंग का वास्तविक अर्थ मानव स्वभाव ताप वृद्धि होना चाहिए। पर्यावरण की ताप वृद्धि की तुलना में मानव स्वभाव ताप वृद्धि अधिक घातक भी है और व्यापक भी। कोरोना की बीमारी ने प्रमाणित कर दिया है कि पर्यावरण प्रदूषण तथा ताप वृद्धि कृत्रिम है, प्राकृतिक नहीं।

(871) पर्यावरण प्रदूषण पर नियंत्रण हेतु वन लगाना ही पर्याप्त नहीं। प्रदूषण फैलाने पर भी नियंत्रण आवश्यक है। एक ट्रैक्टर की नली से निकलने वाले आठ घण्टे के धुएँ

को साफ करने में कई सौ पेड़ों की आवश्यकता होती है। डीजल, पेट्रोल आदि के प्रयोग में कमी पर्यावरण सुरक्षा की दृष्टि से उचित कदम है। औद्योगीकरण को संतुलित करना पर्यावरण प्रदूषण निवारण का श्रेष्ठतम् उपाय है।

(872) मोटर साईकिल के साईलेन्सर से निकलने वाला धुआँ जो प्रदूषण फैलाता है उसका प्रभाव दूर करने के लिए रोटी, कपड़ा, दवा पर टैक्स लगाया जाता है। यह गलत है।

(873) यदि वन उत्पादन को पूरी तरह कर मुक्त कर दिया जाए तो भारत में वनों का क्षेत्रफल अशासकीय क्षेत्र में स्वतः ही तेजी से बढ़ जाएगा। वनों के सम्बन्ध में भारत वन सुरक्षा की नीति पर चल रहा है जबकि उसे वन विस्तार की नीति पर चलना चाहिए। पर्यावरण की दृष्टि से वन विस्तार आवश्यक है जो वन सुरक्षा की नीतियों को बदले बिना संभव नहीं। वर्तमान शौकिया पर्यावरण प्रेमियों की नासमझी भी वन विस्तार में बाधक है।

(874) कृत्रिम ऊर्जा पर पर्यावरण कर लगाकर तथा व्यक्तिगत वनों पर प्रतिवर्ष की पर्यावरण सब्सीडी वन क्षेत्र के विस्तार में सहायक हो सकती है।

आवागमनः—

(875) भारत में स्वतंत्रता के बाद आबादी चार गुना बढ़ी है तो आवागमन सौ गुना बढ़ गया है। सत्तर वर्षों में जीवन स्तर में बहुत सुधार हुआ तो दूसरी ओर आवागमन लगातार सस्ता होता गया। आवागमन सस्ता होने से लघु उद्योग बंद होते गए तथा बड़े उद्योग बढ़ते चले गए। व्यक्ति की आवश्यकताएं सुविधा में तथा सुविधाएं विलासिता में बदल गई।

उत्पादक—उपभोक्ताः—

(881) सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति उत्पादक भी होता है और उपभोक्ता भी, किंतु कुछ लोग उपभोग की तुलना में उत्पादन अधिक करते हैं तो अन्य लोग उत्पादन की तुलना में व्यवस्था। भारत में व्यवस्था में लगे लोगों ने उत्पादन में लगे लोगों का शोषण किया है। उपभोक्ता तो सभी होते हैं चाहे वे उत्पादन में लगे हों या व्यवस्था में।

(882) दुनिया के विकसित देश कृत्रिम उर्जा उपलब्ध क्षेत्र हैं तो भारत श्रम बहुल देश। भारत में भी उत्पादन तो बढ़ा किंतु मानवीय श्रम और पशुओं को उत्पादन से दूर करके। इसलिए अन्य देश उत्पादन वृद्धि में हमसे आगे निकल गए। अन्य कई देशों में उत्पादित वस्तुए आज भी भारत से सस्ती हैं जिनका हम आयात करते हैं।

(883) भारत को उपभोक्ताओं की तुलना में उत्पादकों की अधिक चिन्ता करनी चाहिए किन्तु कार्य इसके विपरीत हो रहा है। अब भारत को सुखी भारत की तुलना में आत्मनिर्भर भारत की दिशा में चलना चाहिए। इसके लिएः— (1) उत्पादन बढ़ाना तथा उपभोग घटाना होगा। (2) आयात घटाना तथा निर्यात बढ़ाना होगा। (3) उपभोक्ता

वस्तुओं को महंगा और उत्पादन इकाईयों को प्रोत्साहित करना होगा। (4) श्रम कानून तथा उपभोक्ता कानून बिल्कुल समाप्त करना होगा।

नरेगाः—

(891) श्रम और बुद्धि, गांव और शहर तथा विकसित और अविकसित क्षेत्रों के बीच दूरी कम करने के लिए नरेगा एक बहुत ही प्रभावकारी योजना सिद्ध हुई। लागू होने के दो वर्ष बाद ही विकसित क्षेत्रों के दबाव में सरकार ने इसे महत्वहीन बना दिया।

(892) वामपंथियों की सलाह से मनमोहन सिंह सरकार ने नरेगा योजना शुरू की थी और वामपंथियों के ही दबाव से सोनिया जी ने इसको प्रभावहीन बनवाया। नरेंद्र मोदी जी यह योजना फिर से सक्रिय कर रहे है।

शहरी ग्रामीणः—

(893) यदि गांव और शहर की तुलना करें तो भौतिक सुविधा, प्रगति के संसाधन, चालाकी और अपराध के मामले में शहर बहुत आगे हैं और गांव बहुत पीछे। दूसरी ओर शराफत नैतिकता, मानवता तथा कानून से भय के मामले में गांव बहुत आगे हैं और शहर बहुत पीछे। सभी गुणों में आगे होते हुए भी विकास की परिभाषा में गांव को बैकवर्ड कहा जाता है।

(894) गांव की आबादी का शहरों की ओर पलायन बहुत घातक है। इसे हर हालत में रुकना चाहिए। कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि इसका सबसे अच्छा समाधान है

बढ़ती आबादीः—

(895) बढ़ती आबादी एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है इसे भारत की सभी समस्याओं का कारण बताना भ्रम फैलाना है।

भाग 9 वैश्विक

विश्व की प्रमुख समस्याएं और समाधानः–

(901) वर्तमान विश्व में भौतिक उन्नति के साथ–साथ नैतिक पतन भी उतनी ही तेज गति से बढ़ रहा है। राजनैतिक तथा आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण हो रहा है। हिंसा और स्वार्थ पर विश्वास बढ़ रहा है। किन्तु ये सभी समस्याएं कुछ विश्वव्यापी विकृतियों के परिणाम हैं, मौलिक नहों। मूल विकृतियां इस प्रकार मानी जा सकती हैं:– (1) निष्कर्ष निकालने में विचार मंथन की जगह प्रचार का अधिक प्रभावकारी होना। (2) संचालक और संचालित के बीच बढती दूरी। (3) राजनीति, धर्म और समाज सेवा का व्यवसायीकरण। (4) भौतिक पहचान का संकट। (5) समाज का टूटकर वर्गो में बदलना। (6) राज्य द्वारा दायित्व और कर्तव्य की परिभाषाओं को विकृत करना। (7) मानव स्वभाव तापवृद्धि। (8) मानव स्वभाव स्वार्थ वृद्धि। (9) धर्म और विज्ञान के बीच बढती दूरी। यदि हम उपरोक्त नौ समस्याओं की रोकथाम कर सके तो अन्य समस्याएं स्वयं कम हो सकती हैं।

विश्व युद्धः–

(911) दुनिया में विश्व युद्ध की कोई निश्चित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। विश्व युद्ध होने की संभावना भी हमेशा बनी रहती है और टल जाने की भी। युद्ध उन्माद जितना घातक होता है उतनी ही घातक पलायन की प्रवृत्ति भी है। युद्ध और शान्ति के बीच संतुलन रखना चाहिए।

(912) विश्व युद्ध से बचने का सबसे आसान मार्ग है, विश्व सरकार बनाने का प्रयत्न। विश्व सरकार में राष्ट्र इकाई न होकर व्यक्ति इकाई होना चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र संघः–

(921) संयुक्त राष्ट्र संघ दुनियां के शान्ति प्रयासों में सहायक है किन्तु निर्णायक नहीं, क्योंकि संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका सीमित है। संयुक्त राष्ट्र संघ दुनिया के राष्ट्रों का संघ है व्यक्तियों का नहीं।

(922) वर्तमान संयुक्त राष्ट्र के रहते हुए उत्तर कोरिया जैसी गुलामी का अस्तित्व सम्पूर्ण मानवता के लिए एक कलंक ही तो है। संयुक्त राष्ट्र संघ चीन को रोकने में सक्षम नहीं है तथा पाकिस्तान जैसे मुस्लिम देशों को भी नहीं रोक पाता है। जहाँ ईशनिन्दा जैसे अन्यायकारी कानून बना रहे है।

पाकिस्तानः–

(931) सामान्यतया पाकिस्तान को भारत का शत्रु माना जाता है किन्तु पाकिस्तान को विरोधी मानना चाहिए वस्तुतः भारत का शत्रु इस्लामिक विस्तारवाद है और पाकिस्तान भी इसके सामने मजबूर है। वर्तमान भारत सरकार की पाकिस्तान के साथ नीति ठीक है।

इराकः–

(941) इराक पर अमेरिकी आक्रमण न्याय की कसौटी पर गलत था और व्यवस्था की कसौटी पर ठीक। क्योंकि इराक एक तानाशाह देश था और अमेरिका लोकतांत्रिक।

भारत, अमेरिका, इस्लाम, चीन सम्बन्धः–

(951) दुनिया में चार संस्कृतियों के बीच प्रतिस्पर्धा हैः– (1) पश्चिम (2) इस्लाम (3) भारत (4) चीन। वर्तमान स्थिति में भारत और पश्चिम को बिना शर्त एक साथ हो जाना चाहिए। चीन और इस्लाम में से एक को टार्गेट करना चाहिए तथा दूसरे के साथ ढुलमुल नीति बनाई जानी चाहिए। भारत, अमेरिका को आपसी प्रतिस्पर्धा तक सीमित रखे। इस्लाम और चीन के बीच किसी एक को परिस्थिति अनुसार विरोधी या शत्रु मानना उचित है।

गुट निरपेक्षताः–

(961) वर्तमान विश्व में मुख्य रूप से दो गुट हैंः– (1) पश्चिम के लोकतांत्रिक देश (2) चीन तथा रूस। इस्लामिक देश अपना कोई स्वतंत्र गुट नहीं बना सके। भारत का भी अपना कोई स्वतंत्र गुट नहीं है। पण्डित नेहरू ने मिश्र के नासिर और मार्शल टीटों के साथ मिलकर स्वतंत्र गुट बनाया था जो आगे नहीं बढ़ सका। अब भारत आंशिक रूप से तीसरा गुट बनाने की कोशिश कर रहा है।

(962) भारत के लिए तीसरा गुट बनाना कठिन कार्य है क्योंकि भारत वर्तमान में दोनों गुटों से कमजोर है तथा भारत का आंतरिक टकराव इस्लाम से है जो तीसरे गुट के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं।

नागासाकीः–

(971) युद्ध काल में शत्रु के साथ मानवीय व्यवहार कभो-कभी घातक होता है। अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय नागासाकी हिरोशिमा पर बम गिराए थे। प्रायः अमेरिका की आलोचना होती है कि बम गिराना अमानवीय था। मेरे विचार से बम गिराना अमेरिका की मजबूरी थी ।

विश्व से सम्बन्धः—

(972) वर्तमान स्थिति में यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि विश्व के लिए प्राथमिक खतरा साम्यवाद है या इस्लाम। भारत की आंतरिक व्यवस्था में तो इस्लाम और साम्यवाद का गठजोड़ हो चुका है और प्राथमिक खतरा यह गठजोड़ ही है जिसमें प्रत्येक कंधा इस्लाम का है और बंदूक साम्यवाद की, किंतु विश्व की स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है। मेरे विचार में हमारी प्राथमिकताओं का क्रम इस प्रकार होना चाहिएः— (1) लोक स्वराज्य अर्थात वर्ण आश्रम व्यवस्था से सहभागिता। (2) पूंजीवाद और लोकतंत्र से मित्रता। (3) इस्लामिक विस्तारवाद का विरोध। (4) साम्यवादी तानाशाही से शत्रुता।

एन.जी.ओः—

(981) राजनैतिक व्यवस्था में भारी भ्रष्टाचार के समाधान के रूप में एनजीओ अर्थात सामाजिक संस्थाओं को व्यवस्था में शामिल किया गया। धीरे—धीरे ये एनजीओ भी सरकारी संस्थाओं की तरह ही भ्रष्ट हो गए। सरकारी संस्थाओं पर सरकार का अंकुश था लेकिन इन संस्थाओं पर वह अंकुश भी नहीं रहा। ये एनजीओ संगठन बनाकर सरकार को भी ब्लैकमेल करने लगे। इन संस्थाओं ने विदेशी सरकारों से भी सम्बन्ध बना लिए है।

(982) वर्तमान भारत में सामाजिक संस्थाओं के बोर्ड लगाकर भ्रष्टाचार तथा ब्लैकमेल करना एक फैशन बन गया है। एनजीओ भारत के लिए समाधान न होकर समस्या है।

यदि मैं तानाशाह होता तोः—

(1) तत्काल घोषणा करता कि तीन महिने के भीतर पचास ऐसे लोगों को सार्वजनिक फांसी, सौ को आजीवन कारावास और पांच सौ को पांच से दस वर्ष तक के कारावास की सजा दी जाएगी जिनके नाम गुप्तचर पुलिस के गुप्त मुकद्में की, सुप्रीम कोर्ट द्वारा विशेष रूप से निर्मित गुप्त न्यायिक सेवा द्वारा गुप्त सुनवाई के बाद, तय किए जाएं।

(2) तत्काल संविधान में संशोधन करके पांच विभाग ''वित्त, विदेश, न्याय, सेना और पुलिस'' केन्द्र सरकार के पास रखकर अन्य सभी विभाग समाप्त कर देता और शेष सबकी व्यवस्था परिवार, गाँव, जिला, प्रदेश और केन्द्र सभाओं में बांट देता।

(3) सभी प्रकार के कर समाप्त करके सम्पूर्ण चल—अचल सम्पत्ति पर दो प्रतिशत वार्षिक तथा कृत्रिम ऊर्जा का मूल्य दो से ढ़ाई गुना तक बढ़ा देता। केन्द्र सरकार को प्राप्त सम्पूर्ण कर में से पांच विभाग का खर्च पूरा करने के बाद शेष सम्पूर्ण धन देश के प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से वितरित कर देता।

(4) तत्काल ही सभी प्रकार के आरक्षण समाप्त करके श्रम की मांग को इस तरह बढ़ने देता कि श्रम के मूल्य में भारी वृद्धि हो जाए।

(5) सम्पत्ति के व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करके सम्पत्ति को परिवार की घोषित कर देता जिसमें परिवार के प्रत्येक सदस्य का समान हिस्सा होता।

(6) मार्गदर्शक, रक्षक और पालक के लिए उच्चस्तरीय प्रशिक्षण अनिवार्य कर देता जिसके चयन के लिए पूर्व परीक्षा आवश्यक होती।

(7) प्रत्येक व्यक्ति का किसी परिवार के साथ जुड़ना अनिवार्य कर देता।

(8) संविधान निर्माण या संशोधन की किसी भी प्रक्रिया से तंत्र की तीनों इकाइयों को दूर कर देता।

(9) संविधान की उद्दशिका में 'समानता' शब्द की जगह स्वतंत्रता लिख देता।

(10) आदेश दे देता कि राज्य, धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब–अमीर, किसान–मजदूर, उत्पादक–उपभोक्ता के आधार पर कोई अलग कानून न बनाकर प्रत्येक नागरिक के लिए समान कानून बनाएगा।

(11) चुनावों म या तो दलीय प्रणाली लागू कर देता अथवा पूरी तरह निर्दलीय। सारे भ्रम समाप्त कर देता।

(12) प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकार के रूप में केवल एक अधिकार मान्य होता, ''व्यक्ति की समान असीम स्वतंत्रता''।

(13) फांसी की सजा प्राप्त व्यक्ति को दोनों आँख निकालकर जमानत पर जीवित रहने के लिए न्यायालय को अनुमति का अधिकार दे देता।

(14) किसी भी नागरिक को शस्त्र रखने का अधिकार समाप्त कर देता।

(15) किसी भी प्रकार के संगठन अवैध घोषित कर देता।

(16) सरकारी मुद्रा के साथ–साथ व्यक्तिगत मुद्रा चलाने की छूट दे देता।

हमारा मुख्य नारा यह है :–

1— शराफत छोड़ो, समझदार बनो ।
2— सुनिए सबकी, करिए मन की।
3— लोकतंत्र की है पहचान, मानव—मानव एक समान ।
4— लोकस्वराज्य की है पहचान, तंत्र मुक्त हो संविधान ।
5— ऊपर धर्म न राज्य, सबसे ऊपर समाज।
6— लोकसभा न विधानसभा, सबसे ऊपर ग्राम सभा।
7— समाज सर्वोच्च, समाज सर्वशक्तिमान।
8— हमें सुराज्य नहीं, स्वराज्य चाहिए।
9— हमें असफल लोकतंत्र नहीं, सफल लोकस्वराज्य चाहिए।
10— समस्याओं के प्रणेता, कर, कानून, नेता।
समाधान का आधार, ज्ञानयज्ञ, परिवार।